BAMM(N)-222

भारतीय शास्त्रीय संगीत शास्त्र एंव प्रयोगात्मक–माइनर
पंचम सेमेस्टर

संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMM(N)- 222

भारतीय शास्त्रीय संगीत शास्त्र एंव प्रयोगात्मक

संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर

पंचम सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी–263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन मंडल समिति

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

संयोजक
निदेशक– मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रो0 पंकजमाला शर्मा (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0मल्लिका बैनर्जी (स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, नई दिल्ली

प्रदीप कुमार (स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांईं (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रूफरिडिंग एवं फार्मेटिंग

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

इकाई लेखन

1.	डॉ0 महेश पाण्डे	इकाई 1, 3, 4
2.	डॉ0 जगमोहन परगांई	इकाई 2,
3.	डॉ0 निर्मला जोशी श्री प्रदीप कुमार	इकाई 6
4.	डॉ0 विजय कृष्ण,	इकाई 5, 7

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2025
प्रकाशक : निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल **: books@uou.ac.in**

नोट– इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्चन्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMM(N)-222

भारतीय शास्त्रीय संगीत शास्त्र एंव प्रयोगात्मक
संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर
पंचम सेमेस्टर

इकाई 1— श्रुति एवं स्वर की व्याख्या (प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार) पृ0सं0 01—13

इकाई 2— दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय पृ0सं0 14—20

इकाई 3 — मार्ग संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान पृ0सं0 21—36

इकाई 4 — भारतीय संगीत में थाट पद्धति पृ0सं0 37—47

इकाई 5 — प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य पृ0सं0 48—63

इकाई 6— पाठ्यक्रम के रागों भैरव एवं बिहाग में छोटा ख्याल/रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना । पृ0सं0 64—76

इकाई 7— पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम के तालों के ठेकों को दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना। पृ0सं0 77—84

इकाई 1 – श्रुति एवं स्वर की व्याख्या(प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 श्रुति और स्वर विभाजन
1.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर
1.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर
1.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर
1.7 दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–222) पचंम सेमेस्टर की प्रथम इकाई है। प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसमें प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार स्वर एवं श्रुति की स्थिति. एवं स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। इसमें विद्वानों के मतों को भी बताया गया है। इसमें बताया गया है कि संगीत में श्रुति एवं स्वर का क्या अस्तित्व है तथा श्रुति एवं स्वरों की संख्या एवं स्वरूप क्या है। संगीत में स्वर की परम्परा प्राचीन समय से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। इस इकाई में आपको दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप श्रुतियों पर स्वर स्थापना (प्राचीन से वर्तमान तक) को समझ सकेंगे। साथ ही स्वर की शुद्ध एवं विकृत स्थिति एवं उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भी आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत के मूल आधार स्वर को प्राचीन से आधुनिक काल तक स्थापित करने हेतु क्या प्रणाली रही है।
- समझ सकेंगे कि शुद्ध एवं विकृत स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध रहा है तथा सप्तक की 22 श्रुतियों में इसकी स्थापना का मुख्य आधार क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के प्रसिद्ध विद्वानों के साथ–साथ समकालीन विद्वानों के स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में क्या मत हैं।
- बता सकेंगे कि विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वर एवं श्रुति का सम्बन्ध किस प्रकार अन्य से स्थापित किया गया है।
- आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी जान सकेंगे।

3.3 श्रुति और स्वर विभाजन

इसके पहले कि हम श्रुति–स्वर विभाजन को समझें यह आवश्यक है कि श्रुति तथा स्वर पर अलग–अलग विचार कर लें।

श्रुति – संस्कृत में 'श्रु' शब्द का अर्थ होता है 'सुनना'। इसलिए श्रुति का अर्थ हुआ 'सुना हुआ'। प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी श्रुति की परिभाषा इस प्रकार की है, 'श्रुयते इति श्रुतिः'। अर्थात जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर यह परिभाषा पूर्ण नहीं है, क्योंकि श्रुति का संगीतोपयोगी होना आवश्यक है और कानों को तो अनेक ऐसी ध्वनियां सुनाई पड़ सकती हैं जिनका सम्बन्ध संगीत से बिल्कुल नहीं है। इसलिए इतना कह देना कि जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है, पर्याप्त नहीं है। आधुनिक काल के ग्रन्थकारों ने श्रुति की पूर्ण परिभाषा इस प्रकार की हैः–

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम्।।

अर्थात् वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते हैं। 'अलग' तथा 'स्पष्ट' शब्द यहाँ पर बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि श्रुति का यह गुण है कि उसे कानों को स्पष्ट सुनाई पड़ना चाहिए तथा पास की दो श्रुतियों में इतना अन्तर होना चाहिए कि वे एक–दूसरे से अलग पहचानी जा सकें। इसलिए संगीत के विद्वानों का विचार है कि ऐसी ध्वनियाँ जो एक दूसरे से अलग तथा कानों को स्पष्ट सुनाई पडें, श्रुति कहलाएंगी। एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियां हो सकती हैं। कहने का अर्थ यह हुआ कि मध्य सा से तार सा(एक सप्तक) के बीच में केवल 22 श्रुतियाँ हो सकती हैं।

स्वर – एक सप्तक की 22 श्रुतियों में से चुनी गयी 7 श्रुतियाँ जो एक दूसरे से काफी अन्तर पर स्थापित हैं तथा जो सुनने में मधुर हैं, स्वर कहलाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रुति और स्वर में अन्तर नहीं है। केवल अन्तर यह है कि 22 श्रुतियों में से दूर–दूर की 7 श्रुतियाँ छाँट ली गई और उन्हीं छाँटी गई 7 श्रुतियों को शुद्ध स्वरों के नाम से पुकारा जाता है। सात स्वरों को षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद के नामों से पुकारा जाता है। "संगीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में स्वर की परिभाषा इस प्रकार की गई हैः–

श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रन्जयतिश्रोतृचितं स स्वर उच्यते।।

अर्थात् वे मधुर ध्वनियाँ, जो बराबर स्थिर रहें तथा जिनकी झनकार मन को लुभाने वाली हों, स्वर कहलाती हैं।

स्वरों की उत्पत्ति – वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचार था और वे स्वर–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहलाते थे। उदात्त ऊँचे स्वर को कहते थे तथा अनुदात्त नीचे स्वर को। स्वरित स्वर के लिए कोई निश्चित मत नहीं था। कुछ लोग इस स्वर को उदात्त तथा अनुदात्त स्वरों के बीच का स्वर मानते थे, कुछ लोग इसे उदात्त से ऊँचा स्वर मानते थे तथा कुछ लोग इसे अनुदात्त से नीचा का स्वर मानते थे। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीनों स्वर थे जो क्रमशः गांधार, ऋषभ तथा षड्ज स्वरों के समान माने जा सकते हैं। वैदिक काल में इन तीनों स्वरों को प्रथमा, द्वितीया और तृतीया के नामों से पुकारा जाता था। ऐसा भास होता है कि गांधार स्वर प्रथम होने के कारण उस समय गांधार ग्राम का प्रचार था। कुछ समय के बाद वैदिक काल में ही इन तीन स्वरों के अलावा गांधार से एक ऊँचा स्वर 'चतुर्थ' नाम से प्रचार में आया। इस चौथे स्वर को कुछ लोग 'कुष्ठा' के नाम से पुकारते थे तथा इसे मध्यम स्वर के अनुरूप मानते थे। इस प्रकार अब कुल मिलाकर 'सा रे ग म' ये चार स्वर प्रचार में आ गए थे। मध्यम स्वर के आने से मध्यम ग्राम प्रचार में आया। यह बात हमको ध्यान में रखनी चाहिए कि वैदिक स्वरों में षड्ज–पंचम भाव की प्रधानता थी और इस कारण पंचम, धैवत तथा निषाद ये तीन अन्य स्वर प्रचार में आए। स्वर–संवादित्व के अनुसार प्रथमा अथवा उदात्त के अन्तर्गत गांधार तथा निषाद स्वर हुए, द्वितीया

अथवा अनुदात्त के अन्तर्गत ऋषम तथा धैवत स्वर हुए और तृतीया अथवा स्वरित के अन्तर्गत षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर हुए। इस प्रकार सातों स्वर प्रचार में आए। 'नारदीय शिक्षा' नामक ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख मिलता हैः–

उदात्ते निषाद गांधारौ, अनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते, षड्जमध्यमपंचमाः।।

शिक्षाकार ने नारदीय शिक्षा में, यद्यपि श्रुति की परिभाषा अथवा व्याख्या नहीं दी है तथापि उन्होंने भी श्रुति को महत्व दिया है। इसी प्रकार यद्यपि शिक्षाकार ने श्रुति–संख्या का भी उल्लेख नहीं किया तथापि ग्रामोल्लेख, साधारण स्वरोल्लेख तथा पंचम व धैवत की ह्रास एवं वृद्धि विषयक उल्लेखों से आभास होता है कि शिक्षाकार को बाईस श्रुतियों का ज्ञान था।

शिक्षाकार ने पांच श्रुति जातियों का भी नामोल्लेख किया है, परंतु वे श्रुति–जातियाँ अधिक स्पष्ट नहीं हैं। शिक्षाकार ने श्रुति जातियों पर चर्चा करते हुए कहा है कि आयता जाति का प्रयोग नीचे के स्वरों में, मृदु जाति का उसके विपरित अर्थात् उच्च स्वरों में तथा मध्या जाति का प्रयोग अपने स्वर में अर्थात् समान स्वरों में होता है। इस कथन से तात्पर्य यह भी हो सकता है कि अनुदात्त स्वरों में आयता, उदात्त में मृदु तथा स्वरित स्वरों में मध्या श्रुति–जाति का प्रयोग होता है। परंतु श्रुति जातियों का प्रयोजन एवं उनके वास्तविक लक्षण अथवा स्वरुप के वर्णन प्राप्त न होने के कारण शिक्षाकारोक्त श्रुति–जातियाँ स्पष्ट नहीं हो पाती। शिक्षाकार ने वैदिक स्वरों के अन्तर्गत भी श्रुति–जातियों का उल्लेख किया है। इसके अंतर्गत शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर(वेणु का गान्धार) की श्रुति जातियाँ–मृदु, मध्या तथा आयता बताई हैं। यदि वैदिक संगीत का द्वितीय स्वर, लौकिक संगीत का गान्धार है, जैसा सामान्यतया माना जाता है, तब यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि गान्धार स्वर द्विश्रुतिक स्वर है। इस प्रकार उपरोक्त कथन में यह भी स्पष्ट नहीं होता कि द्वितीय स्वर गान्धार है अथवा लौकिक संगीत का द्वितीय स्वर–ऋषभ।

नारदीय शिक्षा में वर्णित स्वरोल्लेखों के इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन संगीत दो भिन्न–भिन्न धाराओं में प्रचलित था–वैदिक संगीत तथा लौकिक संगीत। तत्कालीन समाज में इन दोनों प्रकार की संगीत शैलियों का प्रचार था तथा लौकिक संगीत को प्राचीन गौरवमय वैदिक परम्परा से सम्बद्ध करने की प्रथा का चलन था। इसी क्रम में वैदिक संगीत के स्वरों तथा लौकिक संगीत के स्वरों की नारदीय शिक्षा में, तुलना की गई। इसी प्रकार लौकिक स्वरों की जातियों, उनके वर्ण, गायक, शरीरगत उत्पत्ति स्थान, देवता आदि उल्लेखों से भी यही संकेत प्राप्त होते हैं।

पाणिनि के समय तक संगीत के सातों स्वर प्रचार में आ चुके थे। यही सात स्वर तथा उनके पाँच विकृत रूप मिलाकर 12 स्वर आजकल प्रचलित हैं। प्राचीन समय में कुछ लोगों का विचार था कि 7 स्वरों की उत्पत्ति अनेक पशु–पक्षियों द्वारा हुई। ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख इस प्रकार मिलता हैः–

मयूर चातकच्छाग क्रौंच कोकिल दुर्दुरा।
गजश्च सप्त षड्जादोन्क्रमा दुच्चारयन्त्यमी।।

अर्थात् मयूर से 'सा', चातक से 'रे', छाग से 'ग', कौंच से 'म', कोकिल से 'प', दादुर से 'ध' तथा हस्ति से 'नि' स्वर उत्पन्न हुआ। कुछ लोगों ने 7 स्वरों को अलग जातियों में विभाजित किया। उनके मतानुसार सा, म तथा प स्वर ब्राह्मण जाति के, रे तथा ध स्वर क्षत्रिय जाति के और ग तथा नि स्वर वैश्य जाति के हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों ने सात स्वरों की उत्पत्ति विभिन्न देवताओं से भी मानी,

परन्तु ये सब मत निराधार हैं। उदाहरण के लिए पशु–पक्षियों से स्वरों की उत्पत्ति वाला मत लीजिए। प्रारम्भिक अवस्था में जब लोगों को स्वरों का बिल्कुल ज्ञान नहीं था उस समय यह पता लगाना एक असम्भव बात थी कि मयूर से चातक की ध्वनि ऊँची है अथवा क्रौंच से कोकिल की ध्वनि ऊँची है इत्यादि। यदि कोकिल की ध्वनि क्रौंच पक्षी से ऊँची भी है तो वह किस स्वर में बोलती है, इसका कोई मापदण्ड तो मालूम नहीं था। इसीलिए यह कहना कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा सात स्वर निकले, कोई सार नहीं रखता। यह तो स्वर–ज्ञान होने पर लोगों के ध्यान में आया कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा हमको विभिन्न सात स्वर प्राप्त हो सकते हैं।

यह एक स्वाभाविक बात है कि प्रत्येक वस्तु का क्रमिक विकास होता है। यह सम्भव नहीं कि पुराने समय में एक साथ ही सात स्वरों की उत्पत्ति हुई बल्कि उसका भी विकास धीमें–धीमें ही हुआ।

श्रुति–स्वर विभाजन – सप्तक की बाईस श्रुतियों को सात स्वरों में बाँट दिया गया है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक यदि हम श्रुति–स्वर विभाजन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि तीनों कालों(प्राचीन, मध्य व आधुनिक) के ग्रन्थकारों ने यह विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के आधार पर कियाः–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

अर्थात षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद तथा गांधार में दो–दो श्रुतियाँ, ऋषभ तथा धैवत स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। इस सिद्धान्त को तीनों कालों के ग्रन्थकार अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर अलग–अलग ढंग से करते हैं। अतएव अब हम तीनों कालों के ग्रन्थकारों का श्रुति–स्वर विभाजन अलग–अलग समझेंगे।

1.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर

प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' तथा शारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' का रचना–काल पाँचवीं शताब्दी तथा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' का रचना–काल 13वीं शताब्दी का माना जाता है। इन ग्रन्थकारों ने अपने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की है। कहने का अर्थ यह है कि यदि 'सा' में चार श्रुतियाँ हैं तो 'सा' की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानी चौथी श्रुति पर की है। इस प्रकार उनसे सात शुद्ध स्वर नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित थे, सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

भरत ने ऊपर लिखे 7 स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गांधार और 'काकली निषाद' इन दो विकृत स्वरों का भी उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। इससे यह पता चलता है कि भरत के समय में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 9 स्वर प्रचार में थे। परन्तु शारंगदेव के ग्रन्थ में शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल 14 स्वरों का वर्णन मिलता है। ये 14 स्वर इस प्रकार थेः– (1)कौशिक 'नि' (2)काकली 'नि' (3)च्युत 'सा' (4)अच्युत 'सा' (5)विकृत 'रे' (6)'ग' (7)साधारण 'ग' (8)अन्तर 'ग' (9)च्युत 'म' (10)अच्युत 'म' (11)कौशिक 'प' (12)'प' (13)विकृत 'ध' (14) 'नि'।

आगे सरलता के लिए भरत तथा शारंगदेव के शुद्ध और विकृत स्वरों को 22–22 श्रुतियों पर स्थापित किया जाता हैः–

क्र.सं.	श्रुति का नाम	भरत के स्वर	शारंगदेव के स्वर
1	तीव्रा		कौशिक 'नि'
2	कुमुद्वती	काकली 'नि'	काकली 'नि'
3	मन्द्रा		च्युत 'सा'
4	छंदोवती	'सा'	अच्युत 'सा'
5	दयावती		
6	रंजनी		
7	रक्तिका	'रे'	विकृत 'रे'
8	रौद्री		
9	क्रोधा	'ग'	'ग'
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी	अन्तर 'ग'	साधारण 'ग'

12	प्रीति		अन्तर 'ग'
13	मार्जनी	'म'	च्युत 'म'
14	क्षिती		
15	रक्ता		अच्युत 'म'
16	संदीपनी	'प'	कौशिक 'प'
17	आलापिनी		'प'
18	मदन्ती		
19	रोहिणी		
20	रम्या	'ध'	विकृत 'ध'
21	उग्रा		
22	क्षोभिणी	'नि'	'नि'

स्वर' ही तो संगीत का पर्याय है। इसलिए 'स्वर' के साथ जिन पशु–पक्षियों के सम्बन्धों की चर्चा प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने की है वह भी एक प्रकार से उपर्युक्त कारणों से जुड़ी हुई है। षडजादि 'स्वरों' से जिन पक्षियों और पशुओं की ध्वनियों का सम्बन्ध जोड़ा गया है उसे इसी कारण न तो कोरी कल्पना कहा जा सकता है और न ही इन विचारों को किसी अन्य दृष्टि से निराधार कहा जा सकता है।

संगीत मकरंद में नारद ने षडजादि स्वरों के साथ पक्षियों या पशुओं की ध्वनि का सम्बन्ध बताया है, उन सब में समानता अधिक है और भिन्नता कम। षडज, पंचम और निषाद–इन तीन स्वरों के साथ मोर, कोयल और हाथी की ध्वनियों के सम्बन्ध में तो इस वर्ग के सभी विद्वान एकमत हैं शेष स्वरों में भी कोई बहुत बड़ा मतभेद नहीं है।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों में एक अन्य विशेषता यह भी थी कि वे सप्तक की 22 श्रुतियों को समान मानते थे। उनके प्रत्येक पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर समान होता था अर्थात जितना अन्तर पहली श्रुति और दूसरी श्रुति में था उतना ही अन्तर दूसरी व तीसरी श्रुति में था। इस प्रकार सारी श्रुतियाँ समानान्तर पर थी। समानान्तर पर होने से उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक 'प्रमाण' बन गया था और वे इस अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' कहकर पुकारते थे। प्राचीन काल में वे लोग स्वरों को श्रुतियों के नाम से पुकारते थे, क्योंकि वे एक सप्तक के 22 बराबर–बराबर भाग करते थे। इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति से नाप सकते थे।

1.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर

यह समय 14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में हमको उत्तर–हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चार प्रमुख ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं–(1) कवि लोचन की लिखी "राग–तरंगिणी" जो लगभग 15वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखी गई (2) पं. अहोबल कृत "संगीत पारिजात" जो 17वीं शताब्दी में लिखी गई (3) हृदय नारायण देव कृत "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" जो 17वीं शताब्दी के अन्त में लिखी गई (4) पं. श्रीनिवास कृत "राग तत्व विबोध" जो 18वीं शताब्दी में लिखा गई।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों की तरह मध्यकालीन संगीत ग्रन्थकारों ने भी अपने 7 शुद्ध स्वरों की स्थापना "चतुश्चैव" वाले सिद्धान्त को मानकर स्वरों की अन्तिम श्रुति पर की है। अर्थात् मध्यकालीन शुद्ध स्वर भी प्राचीन काल की तरह 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित हैं– सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

कवि लोचन के ग्रन्थ "राग तरंगिणी" में 18 स्वरों का वर्णन मिलता है। लोचन अपने शुद्ध 'रे', 'म' तथा 'नि' स्वरों को क्रमशः तीव्र 'रे', अति तीव्रतम 'ग' तथा तीव्रतर 'ध' कहकर पुकारते थे।

उन्होंने अपने विकृत स्वर, शुद्ध स्वर के ऊपर स्थापित किए हैं। जैसे शुद्ध ग के बाद तीव्र 'ग', तीव्रतर 'ग', तीव्रतम 'ग' अथवा तीव्र 'रे' के बाद तीव्रतर 'रे' इत्यादि। वर्तमान में ऋषभ, गांधार, धैवत, निषाद स्वर, शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल होते हैं। अहोबल के यही चार स्वर शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर कोमल और यही चारों स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। जैसे सातवीं पर अहोबल का शुद्ध–ऋषभ, छठी पर कोमल–ऋषभ और पाँचवीं पर पूर्व–ऋषभ है, नौवीं श्रुति पर शुद्ध–गांधार, आठवीं पर कोमल–गांधार और सातवीं पर पूर्व–गांधार है। इसी प्रकार धैवत और निषाद भी एक–एक श्रुति घटने पर कोमल और दो–दो श्रुति घटने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। अतः चार कोमल और चार ही पूर्व विकृत कुल आठ विकृत–स्वर अपने शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर बनते थे। इस प्रकार अहोबल ने 14 तीव्र और 8 कोमल मिलाकर 22 विकृत–स्वर कहे हैं और उन्होंने इनमें सात शुद्ध स्वरों को मिला कर कुल 29 स्वरों का उल्लेख संगीत–पारिजात में किया। लोचन तथा अहोबल के विभिन्न स्वरों को 22 श्रुतियों पर स्थापित करके समझाया जाता है :–

श्रुति.सं.	लोचन के स्वर	अहोबल के स्वर
1	तीव्र 'नि'	
2	तीव्रतर 'नि'	
3	तीव्रतम 'नि'	
4	'सा'	'सा'
5		पूर्व 'रे'
6		कोमल 'रे'
7	तीव्र 'रे'	पूर्व 'ग'
8	तीव्रतर 'रे'	कोमल 'ग'
9	'ग'	'ग'
10	तीव्र 'ग'	
11	तीव्रतर 'ग'	
12	तीव्रतम 'ग'	
13	अति तीव्रतम 'ग'	'म'
14	तीव्र 'म'	
15	तीव्रतर 'म'	
16	तीव्रतम 'म'	
17		'प'
18		पूर्व 'ध'
19		कोमल 'ध'
20	'ध'	पूर्व 'नि'
21	तीव्र 'ध'	कोमल 'नि'
22	तीव्रतर 'ध'	'नि'

अहोबल के रिक्त स्थान, लोचन के स्वर के समान हैं।

मध्यकाल के अन्य ग्रन्थकारों ने भी अपने स्वर इसी प्रकार बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए थे। केवल लोचन और अहोबल के स्वरों से ही हम मध्यकालीन श्रुति–स्वर–विभाजन को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसी काल में दक्षिण भारतीय संगीत के विद्वानों ने विभिन्न स्वर बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए हैं।

पं. व्यंकटमुखी ने स्वर्ण और उससे बने आभूषणों में जो अन्तर है, वही श्रुति और स्वर में कहा है। प्राचीन ग्रन्थकार भरतादि के अनुसार व्यंकटमुखी ने बाइस श्रुतियाँ स्वीकार की हैं। बाईस श्रुतियों में स्वरों का विभाजन करते हुए कहा है कि षड्ज से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–ऋषभ, शुद्ध–ऋषभ से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–गांधार, शुद्ध–गांधार से मध्यम की चार श्रुतियाँ हैं, जिनमें से प्रथम पर साधारण–गांधार, साधारण–गांधार से दूसरी श्रुति पर अन्तर–गांधार और अन्तर–गांधार से एक श्रुति पर शुद्ध–मध्यम कहा है। शुद्ध–मध्यम से चार श्रुति का पंचम विद्वानों ने माना है, जिनमें

से तीसरी श्रुति पर वराली–मध्यम, वराली–मध्यम से एक श्रुति पर पंचम, पंचम से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–धैवत, शुद्ध धैवत से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–निषाद है। षड्ज चार श्रुति का कहा गया है, जिसमें पहली श्रुति पर कौशिक–निषाद, कौशिक–निषाद से दूसरी श्रुति पर काकली–निषाद और काकली–निषाद से एक श्रुति पर स्वयं षड्ज विद्यमान है।

व्यंकटमुखी ने मुखारी राग के स्वरों को शुद्ध माना है। जिसके स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार सा रे॒ रे म प ध॒ ध सां होता है। रामामात्य और सोमनाथ जो कि चतुर्दण्डी प्रकाशिका के पूर्व के ग्रन्थकार हैं, का नाम लिए बिना चतुर्दण्डी में कहा गया है कि कुछ लोग सात विकृत स्वर मानते हैं पर चतुर्दण्डी प्रकाशिका में कुल पांच ही विकृत स्वर माने गए हैं। जिनके नाम हैं– (1) साधारण–गांधार (2) अन्तर–गांधार (3) वराली–मध्यम (4) कैशिक–निषाद (5) काकली–निषाद।

शुद्ध–गांधार जब नौवीं श्रुति से एक श्रुति ऊँचा होकर दसवीं श्रुति पर जाता है तो साधारण–गांधार हो जाता है और वही दो श्रुति और ऊँचा होकर बारहवीं श्रुति पर अन्तर–गांधार कहलाता है, गांधार के ये दो विकृत–रूप हुए। मध्यम का एक विकृत–रूप है जो कि पंचम की तीसरी श्रुति पर तथा शुद्ध–मध्यम से तीन श्रुति ऊँचा है एवं आरम्भ से सोलहवीं श्रुति पर है, इसे इन्होंने एक नया नाम वराली–मध्यम दिया। इसी श्रुति पर रामामात्य ने 'च्युत–पंचम–मध्यम' व सोमनाथ ने 'मृदु–पंचम' कहा है। शुद्ध–निषाद जो कि बाईसवीं श्रुति पर है, उससे आगे प्रथम श्रुति पर वह कैशिक–निषाद और तीसरी श्रुति पर काकली–निषाद कहलाता है।

पं. श्रीनिवास ने भी पं. अहोबल के ही अनुसार वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ–साथ दृश्य भी बना दिया, जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा। प्राचीन संगीत इसीलिए आज प्रचार में नहीं है क्योंकि उस समय के स्वर विश्वस्त से ज्ञात नहीं हैं। शुद्ध और विकृत कुल बारह स्वर ही हैं इस पर बल दिया गया है। एक अन्य मत के अनुसार 22 के स्थान पर 24 श्रुतियों का भी उल्लेख किया गया है। जिसमें सा, रे, म, प, ध की चार–चार और ग, नि की दो–दो श्रुतियाँ बताई गई हैं।

एक सप्तक के कुल बारह ही शुद्ध–विकृत स्वर माने हैं। जबकि अन्य समकालीन ग्रन्थों में विकृत स्वरों की संख्या अलग–अलग है। पं. श्रीनिवास ने वीणा पर स्वरों की स्थापना करके स्वर सम्बन्धी अनिश्चितता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। जब बारह ही स्वर हैं तो सबके दो–दो भाग करके क्यों न 24 श्रुतियाँ मान ली जाएँ। 22 श्रुतियों का ही उपयोग है ये भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट है। यद्यपि 24 श्रुतियाँ पं. श्रीनिवास ने अन्य मत से दी हैं।

श्रुतियों के विषय में प्राचीन सारणा–चतुष्टयी द्वारा श्रुतियों की संख्या और जैसा उनकी समझ में आया उनकी माप आदि का वर्णन किया है। भरत व शारंगदेव ने माप के विषय में श्रुतियों को समान असमान कुछ नहीं कहा। भातखण्डे जी के विचार से प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान थी और मध्यकालीन ग्रन्थकारों की असमान। आगे चलकर पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर, आचार्य बृहस्पति आदि ने प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को असमान सिद्ध किया, यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकरों की श्रुतियों के माप के सम्बन्ध में अब भी मतभेद हैं पर चूँकि भातखण्डे जी की विचार धारा का प्रचार अधिक हुआ अतः इन्हीं का मत अनेक नवीन शोधों के उपरान्त भी प्रचार में है।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में सबसे प्रमुख अन्तर यह था कि मध्यकालीन ग्रन्थकार प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते थे। मध्यकाल के सारे ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को असमान मानते थे। इस कारण उन्होंने अपने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के माध्यम से न करके वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाइयों से की है। वीणा के तार पर मध्यकालीन स्वरों की स्थापना आगे दी जाएगी।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में एक समान विशेषता यह थी कि वे लोग अपने सात शुद्ध स्वरों को आधुनिक काफी राग के स्वरों के समान मानते थे अर्थात उनके शुद्ध स्वरों में निषाद स्वर कोमल लगते थे।

1.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर

आधुनिक काल उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इस समय लिखे गए ग्रन्थों में पं. भातखण्डे के दो ग्रन्थ "अभिनव राग मंजरी" तथा "संगीत मालिका" प्रमुख हैं। पं. भातखण्डे ने

सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" वाले प्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार की है। परन्तु उन्होंने अपने शुद्ध स्वरों को प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह उनकी अन्तिम श्रुति पर न रखकर उनको प्रथम श्रुति पर स्थापित किया है। कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर को उसकी अन्तिम श्रुति पर रखते थे, पं.भातखण्डे ने अपने शुद्ध स्वर को उसकी पहली श्रुति रखा है। इस प्रकार पं. भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों को नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित किया है– सा–पहली श्रुति पर, रे–पाँचवीं श्रुति पर, ग–आठवीं श्रुति पर, म–दसवीं श्रुति पर, प–चौदहवीं श्रुति पर, ध–अठारहवीं श्रुति पर और नि–इक्कसवीं श्रुति पर।

पं. भातखण्डे ने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 5 विकृत स्वर मानें हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर एक सप्तक में बारह स्वर माने हैं। यही बारह स्वर आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं। नीचे पं. भातखण्डे के स्वरों को बाईस श्रुतियों पर स्थापित किया गया है। 22 श्रुतियों में स्वरों की स्थापना को लेकर एक नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन षड्ज–ग्राम की श्रुतियों की व्यवस्था को बिना परिवर्तित किए भातखण्डे जी ने स्वर की अन्तिम श्रुति के स्थान पर स्वरों को प्रथम पर स्थापित करके बिलावल को ही प्राचीन आधार दिया।

<u>स्वर</u> – शुद्ध स्वर तो प्राचीन काल से आज तक पूरी दुनिया में सात ही माने जाते हैं। विकृत स्वरों को लेकर अनेक मत हैं, जैसे भरत ने दो, शारंगदेव ने बारह, अहोबल ने बाईस, लोचन ने दस, रामामात्य ने सात और व्यंकटमुखी ने केवल पाँच विकृत–स्वर माने। भातखण्डे जी पर व्यंकटमुखी का प्रभाव अनेक बिन्दुओं में दृष्टिगोचर होता है। अतः उन्होने लक्ष्य–संगीत में सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वरों को आधार प्रदान किया।

श्रुतियों में स्वरों की व्यवस्था के विषय में प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए उसके विपरीत क्रम की चर्चा की गई है। प्राचीन क्रम में चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवी, बीसवीं और बाईसवीं श्रुतियों पर षड्ज, ऋषभ आदि स्वर स्थापित किए गए हैं लेकिन वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में स्वरों को विपरीत–क्रम से संस्थापित करने का उल्लेख है। जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ है तो पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ(ऋषभ की तीन श्रुतियों में से प्रथम पर, परन्तु आरम्भ से गिनने पर पाँचवीं), आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत, इक्कीसवीं पर निषाद स्वर स्थापित किए गए हैं।

<u>विकृत–स्वर</u> – स्वर जब अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा या नीचा होता है तो उसे विकृत कहा गया है। मध्यम अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा हो तो उसे तीव्र–विकृत तथा ऋषभ, गांधार, धैवत तथा निषाद अपनी शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल–विकृत कहे गए हैं। इस प्रकार सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों को मिलाकर कुल बारह स्वरों का उल्लेख है।

<u>वीणा पर स्वरों की स्थापना</u> – वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना का विचार पं. भातखण्डे ने दिया है। ग्रन्थकार का मत है कि स्वर कान के साथ–साथ आँख का भी विषय हो जाए जिससे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टीकरण हो सकेगा, इसलिए वीणा पर स्वरों की स्थापना की गई है।

वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय पं. भातखण्डे का कथन है कि 'पूर्व' मेरू (Bridge) और 'अन्त्य' मेरू के ठीक मध्य में तार–षड्ज, तार–षड्ज और पूर्व मेरू के मध्य अतितार–षड्ज, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के मध्य शुद्ध–मध्यम, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से दूसरे भाग पर पंचम, अन्त्य मेरू और पंचम के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से प्रथम भाग पर ऋषभ, पंचम और तार–षड्ज के मध्य धैवत है जिसे ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवादी होना आवश्यक है। अन्त्य मेरू और धैवत के मध्य तीव्र–गांधार से षड्ज–पंचम भाव से निषाद प्राप्त करें।

उन्होंने विकृत स्वरों के लिए इस प्रकार कहा है कि मेरू और ऋषभ के मध्य कोमल–ऋषभ, मेरू और पंचम के मध्य कोमल–गांधार, मध्यम और पंचम के बीच तीव्र–मध्यम, कोमल–ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवाद करता हुआ कोमल–धैवत, पंचम और तार–षड्ज के तीन भाग करके पंचम की ओर से दूसरे भाग पर कोमल–निषाद कहा है।

आधुनिक ग्रन्थकार अपनी 22 श्रुतियाँ मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह असमान मानते हैं। भातखण्डे जी ने भी स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों की वीणा पर स्वरों की स्थापना मध्यकालीन ग्रन्थकारों की स्थापना से कुछ भिन्न है। आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट के समान मानते हैं अर्थात उनके शुद्ध सप्तक में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन व मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं हैं।

श्रुति.सं.	श्रुति का नाम	आधुनिक शुद्ध तथा विकृत बारह स्वरों की स्थापना
1	तीव्रा	(1) षड्ज
2	कुमुद्वती	
3	मन्द्रा	(2) कोमल ऋषभ
4	छंदोवती	
5	दयावती	
6	रंजनी	(3) शुद्ध ऋषभ
7	रक्तिका	
8	रौद्री	(4) कोमल गांधार
9	क्रोधा	(5) शुद्ध गांधार
10	वज्रिका	
11	प्रसारिणी	(6) शुद्ध मध्यम
12	प्रीति	
13	मार्जनी	(7) तीव्र मध्यम
14	क्षिति	
15	रक्ता	
16	संदीपनी	(8) पंचम
17	आलापिनी	
18	मदन्ती	(9) कोमल धैवत
19	रोहिणी	(10) शुद्ध धैवत
20	रम्या	
21	ऊग्रा	(11) कोमल निषाद
22	क्षोभिणी	(12) शुद्ध निषाद

आधुनिक ग्रन्थकारों में एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये लोग पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों को विभिन्न आन्दोलन संख्याओं के आधार पर स्थापित करते हैं, जबकि प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को यह साधन मालूम नहीं था। स्वर तथा आन्दोलन संख्या के विषय को आगे स्पष्ट किया जाएगा।

संक्षेप में ऊपर दिए गए तीनों कालों के श्रुति–स्वर विभाजन के अन्तर को हम इस प्रकार समझ सकते हैं:–

(1) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते थे। अर्थात् सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं अर्थात् सा–पहली पर, रे–पाँचवीं पर, ग–आठवीं पर, म–दसवीं पर, प–चौदहवीं पर, ध–अठारहवीं पर और नि–इक्कीसवीं श्रुति पर।

(2) प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण बन गया था और इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति द्वारा नाप लिया करते

थे। परन्तु मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते। उन्होंने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के नाप से न करके वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है।

(3) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर सप्तक को आधुनिक काफी थाट के समान मानते थे अर्थात् उनके शुद्ध स्वर में गांधार तथा निषाद स्वर कोमल लगते थे। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार बिलावल थाट को अपना शुद्ध स्वर सप्तक मानते हैं। उनके सात शुद्ध स्वरों में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन तथा मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं है।

(4) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान नहीं था। परन्तु आधुनिक काल के ग्रन्थकारों को पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान था।

<u>प्राचीन ग्रन्थकारों की समान श्रुतियाँ (सारणा चतुष्टयी)</u> – जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण अथवा निश्चित नाप था जो सप्तक की प्रत्येक पास की दो श्रुतियों के बीच में होता था। अर्थात् उनकी पहली और दूसरी श्रुति में जो अन्तर था, वही तीसरी, चौथी और पांचवीं आदि श्रुतियों में था। प्राचीन काल के दो ग्रन्थ प्रमुख हैं–एक भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' तथा दूसरा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर'। भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में श्रुति चर्चा करते हुए 'सारणा चतुष्टयी' में एक प्रयोग लिखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में 'प्रमाण श्रुति' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रुति की परिभाषा देते हुए संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. स्वर एवं श्रुति में क्या अन्तर है? संक्षेप में बताइए।
3. भरत कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध स्वरों को बताइए।
4. प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचलन था।
2. कवि लोचन ने राग तरंगिनी में 20 स्वरों का वर्णन किया है।
3. आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट समान मानते हैं।
4. पाणिनी के समय तक सात स्वरों का प्रचार नहीं हुआ था।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. प्राचीन समय में सा स्वर की उत्पत्ति ____________पक्षी से मानी गई है।
2. पं. शारंगदेव ने बारहवीं श्रुति पर __________स्वर स्थापित किया है।
3. ऋषभ एवं धैवत स्वरों की श्रुति संख्या ____________है।
4. भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर–गान्धार एवं ________________विकृत स्वर माने हैं।

1.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में जान चुके होंगे। प्राचीन काल से स्वरों का अस्तित्व सामने आता है। स्वरों का सम्बन्ध अनेक पशु–पक्षियों एवं देवी–देवताओं से भी जोड़ा गया है। सभी ने श्रुतियों की संख्या 22 मानी है परन्तु उनमें स्वरों की स्थापना में भिन्नता है। विकृत स्वरों की संख्या में भी विद्वानों के मत समान नहीं हैं। प्राचीन विद्वानों ने सप्तक के बराबर 22 भाग कर 22 श्रुतियों में विभाजन करके स्वरों की स्थापना की है परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों को समान न मानते हुए वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाईयों में स्वरों की स्थापना की है। प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी अंतिम श्रुति में स्थान दिया है परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी पहली श्रुति पर स्थापित किया है। विभिन्न कालों के ग्रन्थकारों के माध्यम से स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में उस काल की स्थिति एवं संगीत में प्रयुक्त स्वरों का विषद ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आप श्रुति एवं स्वर से संबंधित विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके होंगे।

1.9 शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. प्रबन्ध – प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. मयूर
2. अन्तर गान्धार

3. तीन
4. काकली निषाद

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु,(2010), भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा,(2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण,(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त,(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति,(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण,(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वर एवं श्रुति का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए विस्तार से प्राचीन कालीन विद्वानों के अनुसार इनकी व्याख्या कीजिए।
2. मध्यकाल एवं आधुनिक काल के विद्वानों के अनुसार श्रुति एवं स्वर की व्याख्या करते हुए परस्पर विश्लेषण कीजिए।

इकाई 2– दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास

2.4 दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर

2.4.1 दक्षिण भारतीय संगीत के थाट

2.5 दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं :

2.6 दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य

2.7 दक्षिण भारतीय ताल पद्धति

2.8 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएं एंव असमानताएं

2.9 सारांश

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना—

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)—222) पंचम सेमेस्टर की द्वितीय इकाई है। प्रस्तुत इकाई में आपको दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी बताया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट, वाद्य, रचनाएं को समझ सकेगें। तथा उत्तर भारतीय संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत की समानताएं एवं असमानताएं को समझ सकेंगे।

पिछली इकाई में आप श्रुति एवं स्वर की व्याख्या (प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार) जान चुके होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप—

1. दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, के विषय में जान सकेंगे।
2. दक्षिण भारतीय संगीत के थाट, के विषय में जान सकेंगे।
3. दक्षिण भारतीय संगीत के वाद्य, के विषय में जान सकेंगे।
4. दक्षिण भारतीय संगीत के रचनाए के विषय में जान सकेंगे।

2.3 दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास –

नाट्यशास्त्र से लेकर संगीतराज ग्रन्थों के अध्ययन से यही पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत में एक ही संगीत पद्धति प्रचलित थी। नाट्यशास्त्र में किसी भी विशेष स्थान से सम्बन्धित सांगीतिक संस्कृति का वर्णन नहीं है, जिसे दक्षिण भारतीय संगीत या कर्नाटक संगीत माना जाए। कुछ विद्वानों के अनुसार संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय तक दक्षिण भारतीय संगीत के पृथक रूप का प्रारम्भ हो गया था। कल्लिनाथ द्वारा विभिन्न संज्ञाओं जैसे पंचश्रुतिक, षडश्रुतिक, जन्य—जनक मेल आदि का प्रयोग किया जाना उस समय में दक्षिण भारतीय संगीत के अस्तित्व को दर्शाता है। संगीतरत्नाकर के काल में दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के बीज अंकुरित हो चुके थे। संगीत की दो प्रणालियाँ प्रचलित है, उनमें से एक को कर्नाटकी और दूसरी को हिन्दुस्तानी प्रणाली कहा जाता है। मद्रास के आस—पास के क्षेत्र में जो संगीत प्रणाली प्रसिद्ध है उसको कर्नाटकी कहा जाता है तथा शेष भारत में सर्वत्र हिन्दुस्तानी प्रणाली प्रचलित है।''

प्राचीन काल से लेकर 1300 ई0 तक पूरे भारत में एक ही शास्त्रीय संगीत का प्रचलन था। मुसलमानों के आने के पश्चात भारतीय संस्कृति में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा। भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम(फारस, ईरान इत्यादि) संस्कृति, संगीत, कला आदि से अत्यधिक प्रभावित हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि जो संगीत ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता है वह शासकों को खुश करने एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रयोग होने लगा। दक्षिणी क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ का संगीत बाह्य संस्कृति से अप्रभावित रहा। इसके परिणामस्वरूप ही भारतीय संगीत में दो अलग—अलग शैली उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धति का निर्माण हुआ।''

2.4 दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर –

दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध तथा विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर हैं। 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं तथा शेष चल स्वर कहलाते हैं। चल स्वर जब अपने स्थान से ऊपर या नीचे हों तो उन्हें क्रमशः तीव्र या शुद्ध स्वर कहते हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत के समान ही है। दक्षिण भारतीय संगीत में विकृत स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत से अलग है तथा इनके नामों में भी भिन्नता है। दक्षिण भारतीय संगीत में स्वर की शुद्ध स्थिति पहले मानी जाती है तथा शुद्ध स्वर के बाद विकृत स्वर आते हैं, जो प्राचीन भारतीय संगीत परम्परा के समान है। दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की स्थिति निम्न तालिका से समझी जा सकती है।

उत्तर भारतीय स्वर		दक्षिण भारतीय स्वर
1. षड्ज	–	षड्ज
2. कोमल ऋषभ	–	शुद्ध ऋषभ
3. शुद्ध ऋषभ	–	चतुःश्रुति ऋषभ या शुद्ध गान्धार
4. कोमल गान्धार	–	षट्श्रुति ऋषभ या साधारण गान्धार
5. शुद्ध गान्धार	–	अन्तर गान्धार
6. शुद्ध मध्यम	–	शुद्ध मध्यम
7. तीव्र मध्यम	–	प्रति मध्यम
8. पंचम	–	पंचम
9. कोमल धैवत	–	शुद्ध धैवत
10.शुद्ध धैवत	–	चतुःश्रुति धैवत या शुद्ध निषाद
11.कोमल निषाद	–	षट्श्रुति धैवत या कैशिक निषाद
12.शुद्ध निषाद	–	काकलि निषाद

2.4.1 दक्षिण भारतीय संगीत के थाट –

उत्तर भारतीय संगीत में जिसे 'थाट' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे 'मेल' कहा जाता है। मेल के आधार पर राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में कुल 72 मेल माने गए हैं। दक्षिण भारतीय पद्धति में एक ही मेल(थाट) में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग एक साथ किया जा सकता है, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में यह प्रयोग मान्य नहीं है। उत्तर भारतीय संगीत के दस थाटों के समकक्ष दक्षिण भारतीय संगीत के मेल निम्न तालिका में वर्णित हैं :–

हिन्दुस्तानी थाट		मेलकर्ता
1. भैरवी	–	हनुमत तोड़ी
2. भैरव	–	मायामालवगौड
3. आसावरी	–	नटभैरवी
4. काफी	–	खरहरपिया
5. खमाज	–	हरिकाम्भोजी
6. बिलावल	–	धीरशंकराभरणम्
7. तोड़ी	–	शुभपंतुवराली
8. पूर्वी	–	कामवर्धिनी
9. मारवा	–	गमनप्रिया
10.कल्याण	–	मेचकल्याणी

2.5 दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं :–

1. **पदम्** – दक्षिण भारतीय पद्धति में पदम् का विशेष स्थान है। पदम् में मुख्य रूप से तीन पंक्तियाँ होती है–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम्। पदम् के रचियताओं में पुरन्दरदास, कनकदास, जगन्नदास, तथा मुट्टु ताण्डव का नाम प्रमुख है। 17वीं सदी के क्षेत्रज्ञ के पदम् अत्यधिक प्रचलित हुए। पदम् के अन्य रचनाकारों में तंजौर के नरेश शाहजी(मराठी व तेलगु भाषा में), स्वाती तिरूनल महाराज(संस्कृत, तेलगू व मलयालम भाषा में) व सुब्बाराय अय्यर का नाम आता है।

1. **कीर्तन/कीर्तनम्** – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की महत्वपूर्ण रचनाओं में कीर्तन का नाम आता है। कीर्तन भगवान की उपासना सम्बन्धित रचना है जो राग व ताल मे निबद्व होती है। इसके तीन अंग माने गए हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् जो प्राचीन प्रबन्ध के अवयव कमशः ध्रुव, अंतरा व आभोग के समान है। कुछ कीर्तन अनुपल्लवी रहित भी होते हैं। कीर्तन में एक से अधिक चरण भी हो सकते हैं। 14वीं–15वीं शताब्दी के तालपाकम्, कीर्तन के प्रथम रचनाकार थे। अन्य रचियताओं में श्री त्यागराज, मुतुस्वामी दीक्षितार, श्यामाशास्त्री, पुरून्दरदास, स्वाति तिरूनाल आदि का नाम आता है।

2. **कृति** – दक्षिण भारतीय संगीत की रचना कृति, कीर्तन का विकसित रूप मानी जाती है। कलात्मक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी गई है। कृति में मुख्यतः श्रृंगार, करूण व भक्ति रस की प्रधानता होती है। इसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता होती है। यह प्रचलित व अप्रचलित दोनों प्रकार के रागों में निबद्ध मिलती है तथा गाई जाती है। कृति में स्वर का प्रमुख स्थान है तथा साहित्य गौण रहता है। इसके तीनों अंगों–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् का प्रयोग कम से किया जाता है।

3. **वर्णम्** – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की रचनाओं में वर्णम् का प्रमुख स्थान है। कर्नाटक संगीत में राग स्वरूप निर्धारण में इसका ज्ञान आवश्यक है। कर्नाटक संगीत में गायक व वादक के लिए वर्णम् की शिक्षा अनिवार्य मानी गई है। राग स्वरूप के निर्धारण व स्पष्टीकरण हेतु हर राग को स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण में रचने के कारण इसको वर्णम् नाम दिया गया। सभागान और वादन में सर्वप्रथम वर्णम् ही गाया या बजाया जाता है। वर्णम् के दो भाग हैं – 1. पूर्वांग 2. उत्तरांग।

4. <u>जावली</u> – यह दक्षिण के जावल शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है श्रृंगारमय गीत। यह आधुनिक गीत का प्रकार है। जावल मुख्यतः श्रृंगार रस प्रधान होती है। इसका विषय मुख्यतः नायक व नायिका के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित रहता है। इसका इतिहास 100–200 वर्ष पूर्व से मिलता है। यह उत्तर भारत की गायन शैली ठुमरी से मिलती जुंलती है। जावली में भी अन्य रचनाओं की भाँति पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् अंग होते हैं। यह मुख्यतः परज, खमाज, काफी, विहाग, झिंझोटी आदि रागों में गाई जाती है तथा इसके साथ प्रायः आदि, रूपक, चापु आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। इसके रचनाकरों में स्वाति तिरूनाल, पट्टणम् सुब्रह्मणयम, श्रीनिवास अय्यंगार आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

5. तिल्लाना – दक्षिण भारतीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियों में तिल्लाना का अपना अलग स्थान है। यह उत्तर भारतीय संगीत के तराना के समकक्ष है। भारतीय संगीत पद्धति के तराना नामक गीत का स्वरूप दक्षिणात्य संगीत का तिल्लाना है। इसका प्रयोग दक्षिण भारतीय संगीत में नृत्य के साथ भी किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तोम, तनन, न, दे, धिन् जैसे निरर्थक अक्षर, सोलकट्टु अर्थात् पाटुक्षर(तरिकिट) और स्वर तथा चरणम् में पद रहता है।

6. <u>रागमालिका</u> – ऐसी रचना जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकृति के रागों का मिश्रण हो उसे रागमालिका कहते हैं। यह एक लम्बी रचना है जिसे भिन्न–भिन्न रागों में अलग–अलग खण्ड़ों में गाया जाता है। इसमें एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि समान स्वरों के रागों को पास ना रखा जाए। रागमालिका में प्रयुक्त ताल शुरू से लेकर अन्त तक एक ही रहता है। इसके रचयिताओं को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह किन रागों का चुनाव करें व उनका क्रम क्या रखा जाए। इसके भी तीन अंग पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् होते हैं।

2.6 दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य –

प्राचीनकाल में उत्तर व दक्षिण संगीत पद्धतियों में वाद्य समान ही थे किन्तु बाद में अलग वातावरण, विभिन्न गायन शैलियों व वाद्यों के विकास के साथ–साथ इनमें भी परिवर्तन होने लगे, इस कारण कुछ नए वाद्य भी अस्तित्व में आए। आज दोनों पद्धतियों में वाद्यों, उनकी बनावट व उनकी वादन शैलियों में काफी अन्तर आ गया है।

1. <u>बेला वाद्य</u> – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में बेला स्वतन्त्र व संगत वाद्य दोनों के रूप में प्रमुख स्थान रखता है। गायन में इसका विशेष प्रयोग आलाप करते समय व तान आदि कियाओं का अनुकरण करने में किया जाता है।

2. <u>दक्षिणात्य वीणा</u> – वीणा का भी दक्षिण भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग स्वतन्त्र वादन व संगत वाद्य दोनों रूप में किया जाता है। प्राचीन काल से ही वीणा का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण भारतीय संगीत में अभी भी वीणा अत्यन्त लोकप्रिय व विकसित रूप में प्रचलित है। कर्नाटक पद्धति में इसके लोकप्रिय होने के कारण इसको समय के अनुसार लगातार विकसित किया जाता है।

3. <u>नागस्वरम् या तूर्य</u> – कर्नाटक संगीत के वाद्य में नागस्वरम या तूर्य का अपना स्थान है। देवालयों में, मांगलिक कार्यक्रमों में, उत्सव आदि अवसरों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह आच्चा लकड़ी का बना होता है जिसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ होती है। इसमें सात स्वरों के रन्ध्र होते हैं जो चौथाई अंगुल व्यास के बनते हैं। मुख्य नागस्वरम् के अलावा एक अन्य नागस्वरम् का प्रयोग स्वर देने के लिए किया जाता है।

4. <u>मृदंगम्</u> – यह कर्नाटकी संगीत का प्रमुख ताल वाद्य है। मृदंगम् में पूड़ी का चमड़ा उत्तर भारतीय पखावज की अपेक्षा मोटा होता है। उत्तर भारत मृदंग की किनार का चमड़ा एक इंच व्यास का रखा जाता है, जबकि दक्षिण भारतीय मृदंगम् में किनारे का यह चमड़ा स्याही के स्थान को छोड़कर पूड़ी का समस्त स्थान घेरता है। इस तरह मृदंगम् में चाँट और स्याही के भाग दिखाई देते हैं जबकि पखावज में पूड़ी, चाँट, लव तथा स्याही इन तीनों भागों में दिखाई देती है।

2.7 दक्षिण भारतीय ताल पद्धति –

कर्नाटक या दक्षिण ताल पद्धति में 35 तालों का प्रयोग किया जाता है। कर्नाटक ताल पद्धति में सात मुख्य ताल हैं। संगीत के क्रियात्मक पक्ष में तालों की अपर्याप्यता को देखते हुए इन तालों में व्यवहारित अंगों को दुगुना, चौगुना, पंचगुना, छःगुना और नौगुना करके इन सात तालों से ही पैंतीस तालों का निर्माण किया गया है। दक्षिण ताल पद्धति में अंग का बहुत महत्व है। अंग 6 प्रकार के होते हैं। तालों के स्वरूप को प्रकट करने व ताल लिखने या प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जो काम उत्तर भारतीय ताल पद्धति में विभागों का है वही दक्षिण में अंगों का है। निम्न तालिका से आप अंगों को समझ सकेंगेः–

कम	अंग नाम	मात्रा	चिन्ह
1	अणुद्रुत	1	˘
2	द्रुत	2	0
3	लघु	4	|
4	गुरू	8	ऽ या 8
5	प्लुत	12	3 या 8
6	काकपद	16	+

2.8 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएं :–

1. दोनों पद्धतियों में एक सप्तक के अन्तर्गत 22 श्रुतियां और 12 शुद्व और विकृत स्वर होते हैं। स्वर स्थानों में भी लगभग समानता है।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में मेलराग वर्गीकरण प्रचलित है तथा उत्तर भारत में थाट–राग वर्गीकरण। मेल व थाट दोनों शब्दों का मतलब एक ही है। दोनों पद्धतियों में थाट/मेल को जनक तथा राग को जन्य माना गया है। थाट राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 भातखंडे जी को तथा मेल राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है।
3. दोनों पद्धतियों की कुछ तालें भी समान हैं। जैसे उत्तर भारत की चारताल व एकताल, दक्षिण की चतस्त्र जाति की अठ ताल के समकक्ष है।
4. दोनों पद्धतियों में विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली देने का प्रावधान है।
5. दोनों पद्धतियों में कुछ राग भी समान हैं। जैसे हंसध्वनि, चारूकेशी, नारायणी, आभोगी, किरवाणी, कलावती आदि। खमाज व विहाग दक्षिण में उत्तर भारत के समान ही गाए जाते हैं। हिंडौल राग उत्तर के मालकौंस के समकक्ष है।
6. दोनों पद्धतियों की कुछ गायन शैलियों में भी समानता पाई जाती है। जैसे तराना–तिल्लाना, ठुमरी–जावलि, ख्याल–वर्णम् आदि।

दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की असमानताएं :–

1. दक्षिण में स्वर के कम्पन पर तथा उत्तर में स्वर की स्थिरता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. दक्षिण में एक ही स्वर को दो नामों से भी जाना जाता है, जैसे चतुःश्रुति ऋषभ, साधारण गांधार, चतुःश्रुति धैवत और कौशिक निषाद को क्रमशः शुद्ध गान्धार, षट्श्रुति ऋषभ, शुद्ध निषाद और षट्श्रुति धैवत जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है। उत्तर में स्वरों के दो नाम नहीं होते।
3. दक्षिण में बन्दिशों में परिवर्तन नहीं किया जाता है। बंदिश की मौलिकता पर विशेष बल दिया जाता है। उत्तर में रचनाओं में इतना बंधन नहीं है। गायक रचना में परिवर्तन कर सकता है।

4. उत्तर में बड़े ख्याल व छोटे ख्याल में रचना(साहित्य) एक से दो पंक्तियों का होता है तथा गायक उसी पर अधिक समय तक राग–विस्तार करता रहता है। दक्षिण की कृतियों में पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् होते हैं तथा इनमें उत्तर की अपेक्षा साहित्य अधिक रहता है।
5. एक मतानुसर कर्नाटक संगीत में विलम्बित लय नहीं होती। रचनाएं प्रायः मध्य व द्रुत लय में होती हैं।
6. उत्तर में 10 थाट माने गए हैं तथा दक्षिण में 72 मेल माने गए हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. दक्षिण भारतीय संगीत को किस अन्य नाम से जाना जाता है?
2. कर्नाटक संगीत के प्रमुख स्तंभों (त्रिमूर्ति) के नाम लिखिए।

ख. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. दक्षिण का .... थाट भारतीय संगीत के तोड़ी थाट के समकक्ष माना जाता है।

2.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट, रचनाओं, वाद्यों एवं ताल पद्धति से भी परिचित हो चुके होंगे।

दक्षिणी क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ का संगीत बाह्य संस्कृति से अप्रभावित रहा। इसके परिणामस्वरूप ही भारतीय संगीत में दो अलग–अलग शैली उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धति का निर्माण हुआ।''

उत्तर भारतीय संगीत में जिसे 'थाट' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे 'मेल' कहा जाता है। मेल के आधार पर राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में कुल 72 मेल माने गए हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध तथा विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर हैं। 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं तथा शेष चल स्वर कहलाते हैं।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु,(2010), भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा,(2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण,(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त,(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति,(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण,(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट एवं रचनाओं के विषय में बताइए।

इकाई 3 – मार्ग संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मार्गी और देशी संगीत
3.4 नायक व गायक
3.5 वाग्गेयकार
3.6 पण्डित
3.7 कलावन्त
3.8 गीत
3.9 गन्धर्व और गान
3.10 तिरोभाव–अविर्भाव
3.11 काकु
3.12 तान
3.13 सारांश
3.14 शब्दावली
3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.18 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–222) पंचम सेमेस्टर की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय के बारे में जान चुके होंगे।

इस इकाई में परम्परागत भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष को लेते हुए यह विभिन्न संगीतज्ञ वर्ग एवं शैलियों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविर्भाव, तिरोभाव, काकु और तान के बारे में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान के साथ–साथ संगीतज्ञ वर्ग वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गायक आदि के विषय में भली भांति जान सकेंगे। मार्गी संगीत एवं देशी संगीत का प्रचलन किस समय था तथा इनका वर्तमान स्वरूप कैसा है, आप बता सकेंगे। इस इकाई में रागों के गायन–वादन में व्याप्त आविर्भाव–तिरोभाव, काकु एवं तान जैसे सौन्दर्यात्मक तत्वों के स्वरूप एवं प्रयोग को भी जान सकेंगे। प्राचीन समय में मोक्ष प्राप्ति हेतु मार्गी संगीत का प्रचलन बहुत अधिक था परन्तु धीरे–धीरे देशी संगीत ने जो मनोरंजन का साधन मात्र है, जगह ले ली है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि प्राचीन काल से अभी तक गीत विधाओं का स्वरूप क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि मार्गी अथवा गन्धर्व तथा देशी अथवा गान आदि संगीत की दोनों धाराओं का समान्तर प्रचलन कैसे आपस में एक दूसरे से प्रभावित रहा है।
- समझा सकेंगे कि राग के सौन्दर्यात्मक तत्वों आविर्भाव, तिरोभाव, तान आदि की विशेषताओं एवं रचना विधि के क्या नियम एवं मान्यताएं हैं।
- बता सकेंगे कि नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि को समाज में किस श्रेणी में रखा जाता है तथा इनकी विशेषताओं एवं गुणों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है।
- बता सकेंगे कि आध्यात्मिक एवं लौकिक संगीत विधाओं का प्रचलन समयानुसार परिवर्तित होता आया है।

3.3 मार्गी और देशी संगीत

संगीत और धर्म का आरंभ से ही अटूट संबंध रहा है। संगीत की वह धारा, जिसका प्रयोग प्रभु की भक्ति के लिए किया गया, उसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी से भाव मार्ग अर्थात रास्ता, परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। दूसरी तरफ वह संगीत जिसका प्रयोग लौकिक सम्मेलनों पर किया जाता था और उसका उद्देश्य केवल लोकरंजनकारी ही था, उसको देशी संगीत कहा गया।

**"मार्गशीयभेदेन द्विधा संगीतमुच्यते।
वेदा मार्गाख्य संगीतं भरतायाब्रवीत्स्वयम्।
गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गदेशीविभागेन संगीतं द्विविधं मतम्।"**

मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर थे और उनमें अपनी इच्छा के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। जबकि देशी संगीत समय के परिवर्तन के साथ ही साथ लोकरूचि के अनुसार भी बदलता रहता था। संगीत की ये दोनों धाराएं समानान्तर रूप से प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही और एक–दूसरे को प्रभावित करती रही। इस प्रकार मार्गी एवं देशी संगीत का आपस में आदान–प्रदान आरंभ से चलता रहा। *डॉ. परांजपे लिखते हैं–"मार्गी संगीत की तुलना यदि गंगा नदी के धीर, गंभीर एवं प्रवाह से की जाए तो देशी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है।"*

जिस संगीत का प्रयोग गन्धर्व लोग करते थे, उसको गन्धर्व संगीत कहा जाता था। इसके गायन के साथ वाद्यों की संगति की जाती थी। इसलिए इस काल में गायन तथा वादन इन दोनों का समावेश होता था। भरत काल में गन्धर्व एक शास्त्र का रूप ले चुका था और इसमें स्वर, ताल और पद, इन तीनों अंगों का होना जरूरी था। गन्धर्व संगीत शब्द प्रधान था, मार्गी संगीत गन्धर्व का ही रूप था।

आधुनिक काल में संगीत की किसी भी धारा के लिए मार्गी और देशी शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत शब्द तथा देशी के स्थान पर लोक शद का प्रयोग किया जाता है। संगीत को तब ही उत्तम समझा जाता है, जब उसमें निम्न प्रकार के पक्ष मौजूद हों–

1. भाव पक्ष 2. कला पक्ष

<u>मार्गी संगीत</u> – मार्गी संगीत वह संगीत था जिसका सम्बन्ध मोक्ष–प्राप्ति के लिए ही किया जाता था। मार्गी का शाब्दिक अर्थ है–मार्ग अर्थात् रास्ता और रास्ते से भाव है परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। ऋषियों–मुनियों, पीर–पैगम्बरों और गुरूओं ने यह अनुभव किया कि संगीत में एकाग्र करने की क्षमता है। सत्तव गुणी संगीत मनुष्य के मन को अपने में लीन करके परमात्मा की भक्ति में लीन कर सकता है। तब उन्होंने इस संगीत का सहारा लिया, जिसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य अध्यात्मवाद ही था। उद्देश्य–पूर्ति के बाद उन्होंने इस संगीत को कठोर नियमों में जकड़ दिया। इस संगीत में लोगों की रूचि के अनुसार कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। प्राचीन काल से संगीत भारतीय संस्कृति एवं जनजीवन का अभिन्न अंग रहा है।

मार्गी संगीत का वास्तवितक रूप क्या था, इसके बारे में स्पष्टीकरण देना कठिन है। आधुनिक युग में यह भी कहा जाता है कि मार्गी संगीत का सम्बन्ध सामवेद की ऋचाओं से माना जाता था अथवा उस संगीत को मार्गी संगीत कहा जाता है जिसका सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था। ईश्वर संबंधी चिन्तन के लिए, मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए, नैतिक उत्थान के लिए अथवा 'रसो वै सः' कहकर रस के चरमोतकृष्ट स्वरूप का आस्वादन करने के लिए आध्यात्मवादियों द्वारा जहाँ साधना या योगसाधना को महत्व दिया गया और जीवन की भौतिक सुन्दरताओं से दूर रहकर एकाग्र चिंतन करते हुए समाधि की अवस्था को महत्व दिया गया। वहीं दूसरे मार्ग में जीवन को चार विभागों में विभाजित करके आयु के अनुसार जीवन को सुन्दर व सुखद रूप में व्यतीत करते हुए भी उसमें लिप्त न होकर अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न को महत्व दिया गया। एकान्तिक साधना में भी और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी, की जाने वाली साधना में सौन्दर्य का विशेष महत्व होता है। सांसारिक स्तर पर सौन्दर्य शारीरिक व मानसिक सुख का कारण बन कर आनन्ददायक प्रतीत होता है जबकि यही सौन्दर्य आध्यात्मिक स्तर पर मानव के नैतिक उत्थान का कारण बनकर जिस असीम आनन्द में परिवर्तित होता है उसे हम दिव्यानुभूति कह सकते हैं। यह आध्यात्मिक अनुभूति ही परम सत्य की प्राप्ति का कारण बनती है और नादोपासना या योगियों द्वारा की जाने वाली ब्रह्म की उपासना, उस लक्ष्य प्राप्ति का साधन। सम्भवतः इसी रहस्य को जानते हुए विद्वानों ने नाद को "तस्मान्नादात्मकं जगत्" कहकर, रस को 'रसो वै सः' कहकर तथा ब्रह्म को "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर नाद, रस व ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की एकाकारता के रूप में साध्य व साधन की अभिन्नता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

<u>वैदिक काल में मार्गी संगीत का रूप</u> – वैदिक काल में साम गान शास्त्रीय संगीत के उद्गम स्रोत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अपौरूषेय, श्रेयस् की प्राप्ति कराने वाला, भौतिकता से परे ले जाने में सक्षम, साधना के समस्त अंगों को स्वीकार करने वाला, विशिष्ट उद्देश्य से परिपूर्ण एवं विशिष्ट नियमों से अनुशासित होने के कारण जो संगीत मर्यादाबद्ध है वही शास्त्रीय, मार्ग या शिष्ट संगीत है, यदि ऐसा कहा जाए तो सम्भवतः अनुचित न होगा। सामवेद को संगीत का मूल कहा जाता है। साम का गान ऋगवेद की ऋचाओं के आश्रय से किया जाता रहा है। यदि ऋक् को वाणी माना जाए तो साम उसका प्राणभूत है। सामसंहिता में ऋकसंहिता के सभी मन्त्र नहीं हैं। इसमें ऋक् के चुने हुए मन्त्रों का संग्रह है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार साम यानि सा + अम के

संवाद से विश्व का संगीत चल रहा है। यदि 'सा' ऋक है तो 'अम' आलाप यानि साम है। यदि 'सा' शब्द है तो 'अम' छंद है। इस प्रकार ऋग्वेद की ऋचाएं सामवेद का आधार कहलाती हैं। अभिप्राय यह है कि सामवेद ने शब्द ऋगवेद से लिया है और स्वर उसका स्वयं का है। अतः साम का अर्थ है ऋचाओं के आधार पर किया गया गान जिसमें मातु या बोल ऋगवेद के हैं और धातु या स्वर साम का है। साम का जो निजी है, स्वयं का है वह स्वर है। इस प्रकार सामवेद अपने गान के पदों को ऋगवेद से लेता है। विशिष्ट नियमों से अनुशासित साम का गान मार्गी संगीत का ही रूप रहा होगा।

सामगान में तीन गायक होते थे जो प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता के नाम से जाने जाते थे। मुख्य गायक उद्‌गाता होता था, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता उसके सहायक होते थे।

1. <u>प्रस्ताव</u> – प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता, ये तीनों गायक मिलकर सबसे पहले 'हुं' का स्वर में उच्चारण करते थे। जिस प्रकार आजकल गायक आरम्भ में आकार का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार उस समय तीनों गायक मिलकर 'हिंकार' का उच्चारण करते थे। उसके साथ ही प्रस्तोता सामगीत के प्रस्ताव भाग को ओंकार सहित गाता था। मन्त्र या गीत के आरम्भ को 'प्रस्ताव' कहते थे। यह गीत का मुखड़ा होता था। 'प्रस्ताव' एक विशेष प्रकार का स्तोत्र था जो ब्राह्मण या प्रस्तोता द्वारा सामगान के आरम्भ में गाया जाता था।

2. <u>उद्‌गीत</u> – इस विभाग को गाने वाला ऋत्विज 'उद्‌गाता' कहलाता था। ये भाग सामगान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 'उद्‌गीत' विभाग के सभी स्तोत्रों का गान 'ओंकार' से प्रारम्भ किया जाना आवश्यक था। उदगीत्, गीत का मुख्य और अधिकांश भाग होता था। 'उद्‌गाता' का अर्थ है ऊँचा गाने वाला। प्रायः 'उद्‌गीत' भाग उच्च स्वरों में होता था।

3. <u>प्रतिहार</u> – 'प्रतिहार' भाग के गाने वाले को प्रतिहर्ता कहते थे। प्रतिहर्ता उद्‌गीत के अन्तिम पद से गाने को पकड़ कर 'प्रतिहार' भाग गाता था। 'प्रतिहार' का अर्थ है दो विभागों को जोड़ने वाला।

4. <u>उपद्रव</u> – उपद्रव का गान उद्‌गाता यानि प्रमुख सामगायक करता था। ये प्रतिहार के अन्त के भाग का गान करता था।

5. <u>निधन</u> – सामगान के अन्तिम भाग को 'निधन' कहते थे। 'ओम्' का उच्चारण कर जब तीनों ऋत्विज यानि प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहार एक साथ मिलकर सामगान करते थे तब वही भाग निधन कहलाता था।

सामगान भी इसी दृष्टिकोण के अन्तर्गत आलाप आदि नियमों से तथा शैलीगत विशिष्टताओं के कारण मर्यादाबद्ध, ऋक् तथा यजुष से उत्पन्न होने के कारण अपौरूषेय, ऋषियों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ब्रह्मोन्मुख साधना से परिपूरित, विशिष्ट ऋचाओं को ही गेयात्मकता प्रदान करने के कारण देवताओं की स्तुतियों से परिपूर्ण, शब्दों की अपेक्षा गेयात्मकता एवं प्रवाहात्मकता का अधिक महत्व होने के कारण भावात्मक सूक्ष्मता पर आधारित एवं शास्त्रोक्त परम्परा से आबद्ध होने के कारण शास्त्रीय परम्परा से परिपूर्ण, मार्गी संगीत का ही द्योतक है। जिस प्रकार प्रत्येक कालखण्ड में लोक संगीत शास्त्रीय संगीत से तथा शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से प्रेरित रहा है उसी प्रकार वैदिक काल में भी इन दोनों के एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है। आधुनिक युग में "मार्गी संगीत" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। जो आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत प्रचलित है उसका मूल उद्‌देश्य लोकरंजनकारी और परिवर्तनशील है, उसको गान कहा जाता है। गान को ही देशी संगीत भी कहा जाता है।

<u>मार्गी संगीत की विशेषताएं :–</u>

1. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था।
2. मार्गी संगीत के नियम कठोर थे और उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था।
3. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था।
4. कहा जाता है कि मार्गी संगीत की रचना ब्रह्मा जी ने खुद की और फिर उसकी शिक्षा भरत को दी।
5. गन्धर्व इस संगीत में बहुत निपुण होते थे। इसलिए इसका प्रयोग गन्धर्व जाति तक सीमित रहा।
6. आधुनिक युग में मार्गी संगीत का स्वरूप नहीं मिलता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत

प्रचलित है।

<u>देशी संगीत</u> – देशी गान से भाव उस संगीत से है जिसका प्रयोग साधारण लोगों ने अपने मनोरंजन के लिए किया। अर्थात् देशी संगीत लोगों का संगीत था उसका मुख्य उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना था। जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोक–रूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं0 शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने हृदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं0 दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रीती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया।

वैदिक कालीन जीवन में देशी संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी। चीनी मिट्टी की एक मुद्रा में एक पुरूष को व्याध्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। आज भी आदिवासी जातियों में व्याघ्रादि हिस्र पशुओं के प्रवेश द्वार पर ग्राम के चारों ओर ढोलक के द्वारा भयंकर गर्जना करने की प्रणाली विद्यमान है। हड़प्पा से प्राप्त एक दूसरे मुद्रा में वाद्य के सम्मुख ढोल बजाए जाने का दृश्य है ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु प्रदेश में ढोल के साथ–साथ तार के वाद्य भी प्रचलित थे। दो मुद्राओं में मृदंग जैसी वस्तुएं अंकित हैं। ढोल का चित्रण भी एक दूसरी मुद्रा पर है। इनमें एक स्त्री ढोल को बगल में दबायए हुए है। तत्कालीन समाज में अनुशासित सामगान रूपी मार्गी संगीत के साथ–साथ देशी संगीत प्रचुर मात्रा में प्रयोजनीय था। खुले प्रांगण में नृत्य कला के कार्यक्रम में नर–नारी दोनों का भाग लेना, वीणा और तुणव की ध्वनि के साथ गान करते जनसमूह का रात्रि जागरण करना, सोमयाग के विशेष अवसर पर सिर पर कलश रख मार्जलीय परिक्रमा करती हुई दासकुमारियों के नाचने गाने का उल्लेख (तै.सं. 7/5/10/3), बुनाई करते हुए मनोविनोद के लिए गाए गए गीत आदि इस बात का प्रमाण है कि सामान्य समाज में भी संगीत का प्रयोग किया जाता था।

अथर्ववेद में उल्लिखित 'गाथा', 'नाराशंसी' तथा 'रैभी' आदि गीत प्रकार जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त गीत ही थे, ऐसा विद्वानों का मत है। क्योंकि डा.परंजपे के अनुसार गाथा आदि गीतों का स्वरूप परम्परागत वीरकाव्य की भांति था जिनका गायन व्यवसायी गायकों द्वारा लौकिक समारोहों पर, राजसभाओं में या विवाह आदि अवसरों पर किया जाता था। नाराशंसी गीत प्रकारों में राजाओं की प्रशंसा की जाती थी। विद्वानों का यह भी मत है कि गाथा गीत प्रकार परम्परागत लौकिक पुरूषों से सम्बन्धित होते थे तथा नाराशंसी गीत प्रकार समकालीन राजाओं की स्तुति से परिपूर्ण होते थे। इन गीत प्रकारों को गाने वाले व्यवसायी गायक–वादक सूत व शैलूष आदि जातियों से सम्बन्ध रखते थे जो सम्भवतः उच्च जातियां नहीं थी।

गायन, वादन और नृत्य तीनों का विकास हमें वैदिक युग में मिलता है। वीणा वाद्य का विकास इस युग में हो चुका था। गायन के साथ इसका प्रयोग भी हो चुका था। अधिकतर नारियां वीणा–वादन करती थी। संगीत के विशेष आयोजन होते थे और नर्तकियां उनमें खुलकर भाग लेती थी। समाज में नृत्य–कला काफी विकसित हो रही थी। इसका प्रमाण ऋगवेद के श्लोक (5/33/6) में आया है– **'नृत्यमनों अमृता'**।

आर्य जाति स्वभाव से ही संगीतप्रिय थी। वैदिक युग में देशी संगीत आयोजन और प्रतियोगिताओं का एक मनोरंजन रूप 'समन' के नाम से देखने में आता है। यह समन एक प्रकार से सांगीतिक मेला था। जहां आमोद–प्रमोद के लिए युवक–युवतियां जाते थे। कुमार और कुमारियां वहां वर की खोज में जाते थे। इस सांगीतिक उत्सव में कुमारियों कि सांगीतिक प्रतिभा की जांच होती थी और सफल एवं प्रतिभा सम्पन्न कुमारियों का चयन विवाह के लिए हो जाता था। यह 'समन' आगे चल कर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ।

वैदिक काल में देशी संगीत को उच्च सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। इसी युग में वीणा का प्रयोग होने लगा था, जो कि पूर्ण सांगीतिक वाद्य यन्त्र था। इस काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों

दृष्टियों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है। गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायन्न, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग होता है। ऋगवेद की रचनाएं स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण 'स्तोत्र' कहलाती थी। गीत–प्रबन्धों को गाथा कहा जाता था, जो एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है और इन गाथाओं का गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। इनके गायक 'गायन्नि्' कहलाते थे। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण–कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। पूजा के अवसरों पर गाए जाने वाले संगीत की पवित्रता और देशी संगीत धुनों की मनोरंजकता ऐसी धूरियां हैं जिनके आस–पास सारा संगीत घूमता है। प्राचीन जातियों का जो साहित्य उपलब्ध है उसमें प्रार्थनाओं, पूजागीतों, स्तुतियों और वंदनाओं की मात्रा अधिक है।

देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध हैं। इसको भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माना है।

<u>1. निबद्ध गायन</u> – जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको निबद्ध गायन के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध, वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

<u>2. अनिबद्ध गायन</u> – जो सांगीतिक सामग्री ताल में न बंधी हो, उसे अनिबद्ध गायन की श्रेणी में रखा जाता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आलाप को माना जाता है। निबद्ध गायन के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं, शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं। जबकि अनिबद्ध गायन के अन्तर्गत आलाप गायन में(विशेष सांगीतिक शैलियां, रचनाएं आदि को जिस राग में पेश करना हो, उसके विशेष स्वरों की बढ़त करते हुए अपनी भावना अनुकूल) राग स्पष्टीकरण किया जाता है। शारंगदेव ने इसको आलिप्त गान कहा है। आलिप्त का अर्थ है विस्तार करना।

<u>आधुनिक काल में देशी संगीत का रूप</u> – आज का शास्त्रीय संगीत देशी संगीत की ही देन है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत जो परिवर्तन समय–समय पर शैलियों के रूप में, उनकी परम्पराओं के रूप में आए, वे देशी संगीत के कारण ही थे। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए उनमें समय के अनुसार नए–नए तत्वों और शैलियों को अपनाया गया। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाली शैलियों जैसे–ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि सभी देशी संगीत की ही देन हैं। ये शैलियां अलग–अलग समय में प्रचलित रही हैं जैसे मध्य काल में ध्रुपद का अधिक प्रचार रहा, उसके पश्चात समय के परिवर्तन के साथ लोगों की रूचि अनुसार ख्याल शैली का अविष्कार हुआ। मुहम्मद शाह रंगीले के समय तक सदारंग–अदारंग ने अनेक ख्यालों की रचना की परन्तु वह स्वयं ध्रुपद शैली ही गाते थे क्योंकि उस समय तक ख्याल को नीच वर्ग की शैली माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ख्याल का अधिक प्रचार हो गया और ध्रुपद का प्रचार कम हो गया। इस प्रकार ख्याल के युग में ठुमरी और गज़ल आदि गीत शैलियों को अशास्त्रीय संगीत माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ये शैलियां भी लोकप्रिय बन गई। उच्च कोटि के संगीतकार शास्त्रीय संगीत पेश करते समय कई प्रकार की लोकधुनों को गाते और वाद्यों पर बजाते हैं और लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार लोकधुनें रागों का रूप धारण कर लेती हैं। खमाज, खम्भावती, काफी, पीलू, मांड़, सारंग आदि रागों के नाम इस वर्ग में आते हैं।

इस प्रकार मार्गी और देशी का परस्पर एक विशेष सम्बन्ध रहा और समय–समय पर यह एक–दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। लोक–संगीत का मौलिक पक्ष बहुत कम मिलता है। उसका मुख्य कारण है कि चित्रपट और शास्त्रीय संगीतकारों ने लोकधुनों को शास्त्रीय संगीत में इस प्रकार सम्मिलित कर दिया है कि लोक–संगीत का मौलिक पक्ष दिन–प्रतिदिन कम होता जा रहा है। आज का शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत देशी संगीत का ही रूप है।

देशी संगीत प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म का असली रूप होता है। इसमें लोक संस्कृति के अंशों का बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन किया गया होता है। देशी संगीत का मुख्य उद्देश्य लोकरंजनकारी था, इसलिए इसमें समय–समय पर परिवर्तन आता रहा है।

देशी संगीत की विशेषताएं :–

1. देशी संगीत का मूल उद्देश्य जनरंजनकारी था।
2. देशी संगीत प्रत्येक देश और प्रांत का अलग–अलग होता है।
3. देशी संगीत स्वर प्रधान होता है।
4. देशी संगीत में लोगों की रूचि अनुसार परिवर्तन होता रहता है।
5. देशी संगीत के नियम मार्गी संगीत की भांति कठोर नहीं होते हैं।
6. आधुनिक युग में देशी संगीत शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि उसके स्थान पर लोक संगीत का प्रयोग होता है।

मार्गी संगीत और देशी संगीत में अन्तर :–

1. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था जबकि देशी संगीत स्वर प्रधान रहा।
2. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था जबकि देशी संगीत का सम्बन्ध जनरंजनकारी था।
3. मार्गी संगीत के बारे में यह कहा जाता है कि इसको ब्रह्मा जी ने खुद बनाया जबकि देशी संगीत मनुष्य ने अपनी रूचि के अनुसार बनाया।
4. मार्गी संगीत का क्या स्वरूप था, इसके बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती परन्तु देशी संगीत प्रत्येक प्रांत का अलग–अलग होता है।
5. मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर होते थे परन्तु देशी संगीत में नियमों की कठोरता नहीं होती थी।
6. मार्गी संगीत का दूसरा नाम गन्धर्व था जबकि देशी संगीत का दूसरा नाम गान था।
7. आधुनिक काल में मार्गी संगीत के स्थान पर शास्त्रीय और देशी संगीत के स्थान पर लोक संगीत शब्द का प्रयोग किया जाता है।

3.4 नायक व गायक

नायक – गुरू से ग्रहण की गई विद्या या कला को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने वाला नायक कहलाता है। गुरू से वह संगीत कला उसी रूप में ग्रहण की थी अतः पीढ़ी दर पीढ़ी कला में आए निखार को और अधिक समृद्ध करते हुए बिना परिवर्तन किए हुए कला को एक ही रूप में रखने वाला कलाकार नायक कहलाता है।

किसी एक घराने में जब कलाकार किसी घराने का मिश्रण न करे और श्रोताओं के सुनते ही यह लगे कि शिष्य में तो उसके गरू की छाया प्रतिबिम्बित हो रही है तो शिष्य का यही गुण उसे नायक की पदवी दिलाता है तथा उसकी कला नायकी कहलाती है। नायकी की यदि ईमानदारी से रक्षा की जाए तो अनेक पीढ़ियों के संस्कार उसकी कला में स्वतः एकत्रित होते रहते हैं, फलतः उसका प्रभाव भी होना स्वाभाविक है।

प्राचीन काल में संगीत से वर्षा होना, पत्थर पिघलना, पशु–पक्षियों का संगीत के वशीभूत होना आदि किवदन्तियाँ आज भी समाज में प्रचलित हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि हमने नायकी की रक्षा की होती अर्थात जैसा गुरू ने सिखाया वैसा ही शिष्य अगली पीढ़ियों को बिना परिवर्तन किए देते जाते तो वर्तमान युग में भी संगीत का वही प्रभाव होता पर ऐसा नहीं हुआ। यानी हमने नायकी को बचा कर नहीं रखा परिणामतः हमारे संगीत का इतना बड़ा ह्रास हो गया।

नायकी के ह्रास के कारण – (1)संगीतज्ञों के पास समय की कमी (2)खानपान में गिरावट (3)नैतिकता का पतन (4)संगीत कला के प्रति समर्पण में कमी (5)धन का लोभ (6)समय की मांग (7)मानव की सहज कमज़ोरी आदि।

मनुष्य गुणों को देर से ग्रहण करता है और अवगुणों को सहज ही अपना लेता है, शायद इसीलिए शारंगदेव को संगीत–रत्नाकर(भाग–2, पृष्ठ–156–169) में गायकों के गुणों के साथ अवगुणों को भी विस्तार से देना पड़ा।

वर्तमान में भातखण्डे जी द्वारा दी गई बन्दिशों को नायकी का उदाहरण कहा जा सकता है। प्राचीन काल में नायक बैजू नायक, गोपाल नायक, चरजू आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। हकीम मो0 करम इमाम ने अपने ग्रन्थ 'मादिनुल मूसीक़ी' में 12 नायकों के नाम इस प्रकार दिए हैः–

(1) भानु, (2) लोहंग, (3) डालु (4) भगवान (5) गोपालदास (6) बैजू (7) पाण्डे (8) छज्जू (9) बक्षु (10) घोपडु (11) मीरामध (12) अमीर खुसरो

<u>गायक</u> – किसी भी विशिष्ट संगीत विधा की गायकी को जानने वाले व्यक्ति को गायक कहा जाता हैं। गायक अपनी संगीत विधा में निपुण होता है तथा उसे गायकी के विभिन्न पक्षों की जानकारी होती हैं। प्राचीन से देशी संगीत के अन्तर्गत अनेक परिवर्तन हुए, अतः इस प्रकार जनरूची के कारण परिवर्तनशील विभिन्न विधाओं की गायकी को जानने वाला गायक ही है। प्राचीन काल में जब संगीत, गांधर्व से अलग हुआ और जो 'गान' कहलाया उसका उद्देश्य ही जन–मन–रंजन करना था। वही गान आगे चल कर देशी–संगीत कहलाया और गांधर्व मार्ग–संगीत के नाम से जाना गया। रूचियाँ सदा से परिवर्तित होती रहती हैं। अतः गायकों को भी अपने संगीत में जन–रूचि के अनुसार कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था, अतः संगीत भी परिर्वतनशील हुआ।

भरत के समय में जो संगीत था, शारंगदेव के समय वह केवल लक्षण बन गया, यानी संगीत में परिवर्तन हो गया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जन–रूचि परिवर्तित हो गई। समय के साथ संगीत बदलता गया और गायकी में भी परिवर्तन हुआ। जाति–गान के स्थान पर ग्राम–राग और देशी–राग आए और ध्रुवा के स्थान पर प्रबन्ध आया। उसके पश्चात ध्रुपद–शैली और आगे चलकर ख्याल–शैली का प्रचार हुआ। ख्याल–शैली में भी आलाप में कमी आई और तान को अधिक महत्व दिया जाने लगा। कहने का भाव यह है कि गायकी जन–रूचि पर आधारित है तथा जो अपनी क्षमता और श्रोताओं की रूचि के अनुसार अपनी गायकी को प्रस्तुत करता है, वही गायक कहलाता है।

3.5 वाग्गेयकार

"शब्दानुशासनमभिधान प्रवीणताछनदः प्रभेदवेदित्यमलंकरेषु कौशलम्
रस भाव परिज्ञान देश स्थितिषु चातुरी"

अर्थात वाणी की रचना करके उसको गेय रूप देने वाला व्यक्ति, जिसको व्याकरण, छन्द, कोष, अलंकार, रस, भाव आदि की पूरी जानकारी हो, उसे वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. भातखंडे जी के अनुसार "प्राचीन समय में जिन संगीत विद्वानों को पद–रचना, स्वर–रचना दोनों का ज्ञान होता था, उनको वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी।"

यह शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है। वाक् का अर्थ है पद–रचना, गेय का अर्थ है गाया जाने वाला और कार का अर्थ है करने वाला, अर्थात् वाणी की रचना करके उसको गायन रूप देने वाले व्यक्ति को वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. शारंगदेव, पं. दामोदर ने इसकी विशेषताओं का वर्णन करते समय मातु और धातु शब्द का प्रयोग किया है। दूसरे शब्दों में 'वाक्' अर्थात पद–रचना को मातु और गीत पक्ष को धातु कहते हैं। चैतन्य देव 'एन इंट्रोडक्शन टू इण्डियन म्युज़िक' में इसके बारे में लिखते हैं– "A Composer is known as Vaggeyakar. This word is derived from three others Vak (word), Geya (song), Kara (One who makes). As the term shows, a Composer must be a master of word and music. If on the other hand, a person who writes only the Literature of a song he is Matukara (matu word of speech) ; If he provides the music to the given poem he is Dhatukara (Dhatu score musical part of song). But a Vaggeyakara Composes both the poem and music, that is he creates a complete song."

संगीत मकरंद में चौथे अध्याय के 21वें श्लोक से लेकर 47वें श्लोक तक वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन किया गया है।

1. जो संगीत में निपुण हो।
2. जिसको संगीत के विभिन्न पक्षों की पूरी जानकारी हो।
3. जिसको देश की विभिन्न भाषाओं की जानकारी हो।
4. जिसको व्याकरण की पूरी जानकारी हो।
5. छन्द के भेदों को जानने वाला हो।
6. साहित्य में वर्णित विभिन्न अलंकारों, उपमाओं का ज्ञान हो।

7. विभिन्न रसों के लिए उचित शब्दावली का ज्ञान हो।
8. उचित लय और ताल के प्रयोग करने की पूरी जानकारी हो।
9. संगीत के विभिन्न काकू भेदों का ज्ञान हो।
10. जो बुद्धिमान और अपनी कला के द्वारा श्रोताओं को आकर्षित कर सके।
11. जिसको संगीत के परिभाषिक तत्वों(सैद्धांतिक और क्रियात्मक) की पूर्ण जानकारी हो।
12. जिसकी स्मरण शक्ति तेज़ हो।
13. जिसकी संगीत के परम्परागत पक्ष की पूर्ण जानकारी हो।
14. जो पढ़ा–लिखा हो।

प्राचीन शास्त्रों में तीन प्रकार के वाग्गेयकार का वर्णन मिलता है–उत्तम, मध्यम, निम्न(घटिया)। जिस व्यक्ति में उपर्युक्त वर्णित सारे गुण हों, उसे उत्तम वाग्गेयकार कहा जाता है। जो स्वर–रचना में तो निपुण हो परन्तु पद–रचना में पूर्ण जानकारी न रखता हो, उसे मध्यम वाग्गेयकार कहा जाता है। जिसकी मातु(पद–रचना), गीत–रचना के उचित पक्ष की पूर्ण जानकारी न हो, उसे निम्न वाग्गेयकार कहा जाता है। संगीत में निम्न वाग्गेयकार का कोई स्थान नहीं है।

संगीत के शास्त्र में इनको नायक भी कहा जाता है। प्राचीन काल और मध्यकाल में वाग्गेयकारों के बहुत नाम मिल जाते हैं, जैसे–हरीदास, तानसेन, नायक बक्श, कौड़ी रंग, रंग बरस, तानसेन, अख्तर पिया, ललन पिया, कदर पिया आदि।

मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयकार के अलावा भक्ति लहर के पीरों–फकीरों, गुरूओं को वाग्गेयकार कहा जा सकता है। डॉ. डी.एस.नरूला ने गुरू नानक देव जी को उत्तम वाग्गेयकार की उपाधि दी है। परन्तु इन वाग्गेयकार को शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में रखना उचित नहीं है क्योंकि इन्होंने अपनी वाणियों के प्रचार के लिए संगीत का केवल सहारा ही लिया है। मध्यकाल के इस श्रेणी के वाग्गेयकारों के नाम इस तरह हैं–गुरू नानक देव जी, कबीर जी, सूरदास, मीरा बाई, जासो बाई, सहिजो बाई, मलूक दास, परमानंद आदि। जिस तरह भक्ति काल का कवि खुद संगीतकार भी था, उस तरह आज का कवि नहीं है। आज का कवि अपनी रचना में सांगीतिक पक्ष का ध्यान तो जरूर रखता है परन्तु यह जरूरी नहीं कि वह उसकी धुन को भावना के अनुकूल बना सके। संगीत को स्वर देने वालों के क्षेत्र भिन्न बन गए हैं। जिसको स्वरकार, संगीत निर्देशक, संगीतकार आदि कहा जाता है। इन कारणों से ही वर्तमान काल में शास्त्रीय वाग्गेयकारों की बहुत कमी है।

3.6 पण्डित

प्राचीन समय में जो विद्वान् संगीत–शास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखता था तथा गायन–कला का साधारण ज्ञान रखता था, उसे पण्डित कहते थे। पण्डित संगीत शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करते हुए नवीन अनुसंधानों का संबंध उससे जोड़ता हैं। पण्डित रागों एवं तालों की पूर्ण शास्त्रात्मक अभिव्यक्ति को शास्त्रों में स्थान देने में सक्षम है। पण्डित संगीत के क्रियात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति को भी शास्त्रों में स्थान दे सकता है। परन्तु उसे प्रदर्शित करने में मध्यम श्रेणी में आता हैं। पण्डितों का संगीत को शास्त्रात्मक रूप में संरक्षण करने हेतु विशेष योगदान है। क्योंकि मध्यकाल से ही क्रियात्मक रूप में जो संगीत विद्वान संगीतज्ञों के पास सुरक्षित था वह शास्त्रों में स्थान मिलने से ही संरक्षित रह पाया है। पण्डितों के संगीत शास्त्रों से हमें मध्यकाल से वर्तमान तक सम्पूर्ण सांगीतिक तत्वों, बंदिशों, रचनाओं के स्वरूप एवं प्रयोगों को लिखित रूप में जान पाए हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पण्डितों द्वारा ही संगीत शास्त्रों का आर्विभाव एवं संगीत के विभिन्न पक्षों का संरक्षण सम्भव हो पाया है। पण्डित एवं वाग्गेयकार में यह विशेष अन्तर हैं कि वाग्गेयकार शास्त्र के साथ–साथ क्रियात्मक पक्ष का भी पूर्ण ज्ञान रखता है तथा वह साहित्य एवं अनेक भाषाओं को भी जानता हैं ।

3.7 कलावन्त

किसी भी विशिष्ट कला विधा के निर्माता एवं प्रसारक को कलावन्त कहा जाता है। उस विशिष्ट कला के समस्त पक्षों को पीढ़ी दर पीढ़ी समृद्धशाली एवं लोकरंजन हेतू उसमें मर्यादित

परिवर्तन करना भी कलावन्त का विशिष्ट कार्य है। निरन्तर अपनी कला विधा के विभिन्न पक्षों की समीक्षा करना एवं उसे समाज में उचित स्थान दिलाने में कलावन्त की विशेष भूमिका है। कलावन्त अपनी कला को परम्परा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से निरन्तर बचाए हुए है। इन्हीं कलावन्तों के प्रयासों से परम्परागत कलाओं को बचाया जा सका है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कलावन्त अपनी विशेष कला को समृद्धशाली बना रहें हैं, मूल रूप में सहेजे हुए हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी इसका प्रसार करते रहे हैं।

3.8 गीत

जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको गीत के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। गीत के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं एवं शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं।

आधुनिक संगीत में गीत रचना के मुख्य नियम–(Laws of Musical Composition)– शास्त्रीय संगीत में गीत रचना(Musical Composition) का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रचलित शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत साधारणतः ध्रुपद, धमार, ख्याल(विलम्बित और द्रुत), टप्पा, ठुमरी, तराना आदि गीतों के भेद पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में तानसेन, सदारंग, अदारंग, मनरंग, हररंग, शोरीमियाँ, रंगीले इत्यादि गीतकारों का विशेष स्थान है। आधुनिक काल भी नई–नई रचनाओं का समय है जिसमें अनेक नई तथा सुन्दर रचनाएं सुनने को मिलती हैं।

गीत रचना के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना अति आवश्यक हैः–

(1) काव्य – सर्वप्रथम गीतकार को यह देखना है कि काव्य गेय, स्पष्ट, सरल है या नहीं। काव्य सरल साधारण श्रोताओं के समझ में आने वाला, हृदयग्राही तथा भावनात्मक होना चाहिए।

(2) रस – कविता के रस को ध्यान में रखते हुए उसके अनुकूल ही राग का चयन करना चाहिए। अधिकतर श्रृंगार, करूण, वीर, शान्त – ये चार रस ही संगीत में प्रधानता रखते हैं। इन चारों में भी श्रृंगार रस अधिक महत्वपूर्ण है। जिस रस का काव्य है उसी रस का राग चुनना आवश्यक है। उदाहरणार्थ श्रृंगार रस के राग काफी, विहाग, सिन्दूरा, खमाज, पीलू, बागेश्री इत्यादि हैं, वीर रस के मालकौंश, शंकरा आदि हैं, शान्त रस के राग केदार, श्री, भूपाली आदि हैं तथा करूण रस के तोड़ी, भैरवी, यमन, कालिंगड़ा आदि हैं।

(3) राग निर्वाचन के बाद उस का मुख्य स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए।

(4) राग में कुछ विशेष स्वर होते हैं जिससे राग प्रारम्भ तथा समाप्त किया जाता है। ऐसे स्वरों को ग्रह और न्यास स्वर कहते हैं। आजकल इन स्वरों पर ध्यान नहीं दिया जाता, परन्तु कुछ राग ऐसे हैं जिनमें कुछ खास स्वरों पर ही अधिकतर न्यास किया जाता है।

(5) स्थाई तथा अन्तरा राग के अलग–अलग उठाव और चलन होते हैं जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

(6) गीत रचना में राग के ऐसे स्वरों का चुनाव होना चाहिए जिससे काव्य का भाव स्पष्ट हो सके।

(7) ताल – गीत रचना ऐसी ताल में करनी चाहिए जिससे राग और काव्य का रस स्पष्ट हो जाए।

(8) ताल के आघातों(विभागों) का गीत के शब्दों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि गीत के उचित स्थानों पर ताल के आघात(ताली और खाली) नहीं पड़ती तो उसमें रसानुभूति नहीं हो सकती।

(9) अन्त में काव्य तथा राग में विश्रान्ति स्थानों का ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि राग में विश्रान्ति स्थानों से अर्थ तथा भाव स्पष्ट होते हैं।

3.9 गन्धर्व और गान

संगीत की परम्परा भारत में पुरातन है। संगीत कला का मुख्य उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आरम्भ में संगीतकला कला के रूप में नहीं थी, बल्कि इस रूप में आने से पहले इसका एक लम्बा युग था। संगीत के आदि ग्रंथ वेद माने जाते हैं। वेदों की ऋचाएं जिनको आर्थिक, गाथिक और सामि कहा जाता था, उनके नियमों के अनुसार ही संगीत का प्रसार किया जाता था। संगीत के इतिहास से पता चलता है कि आरम्भ से ही दो धाराएं समानान्तर रूप में चलती रहीं।

1. वैदिक संगीत
2. लौकिक संगीत

वैदिक संगीत के अन्तर्गत उसकी ऋचाओं को विशेष नियमबद्ध ढंग से गाया जाता था, जबकि लौकिक संगीत में मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार परिवर्तन कर सकता था। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि संगीत शब्द का प्रयोग उस समय नहीं किया जाता था। उस समय गीत शब्द कहा जाता था। गीत से भाव स्वर और लयबद्ध रचना से था। गीत के दो भेद माने गए।

1. गन्धर्व 2. गान

<u>गन्धर्व</u> – इस गीत को गान्धर्व लोग गायन करते थे, इसलिए इसका नाम गन्धर्व पड़ गया। इसका मुख्य उद्देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। प्राचीन गन्धर्व गायन को मार्गी संगीत भी कहा जाए तो निराधार नहीं होगा। इसकी पुष्टि पं. शारंगदेव और दामोदर ने अपने–अपने ग्रंथों में की है। इन दोनों धाराओं का मुख्य उद्देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक गान से ही गन्धर्व संगीत की उत्पत्ति हुई। वैदिक युग के अन्त में गान्धर्व संगीत अप्रचलित हो गया इसलिए उसके मूल रूप के बारे में स्पष्ट करना सम्भव नहीं है।

<u>गान</u> – जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोकरूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं. शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने हृदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं. दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रिती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया। देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माने हैं।

3.10 तिरोभाव–अविर्भाव

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग अमूल्य देन है। राग का मूल उद्देय रंजकता उत्पन्न करना है। संगीत में रंजकता उसको कहा जाता है जो आत्मिक आनंद दे। राग को प्रस्तुत करते समय राग में स्वरों का उचित लगाव, राग का उचित स्वरूप वादी, संवादी और विशेष नियमों का प्रयोग करते समय विभिन्न सांगीतिक क्रियाओं से राग की सुन्दरता का तत्व उभारा जाता है। राग में अविर्भाव और तिरोभाव की क्रियाओं से राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। कलाकार राग का विस्तार करते समय कुछ देर में मूल राग के स्वरूप को छुपा देता है। जिससे श्रोताओं को दूसरे राग की झलक लगने लगती है, ऐसी क्रिया को राग का तिरोभाव कहा जाता है। परन्तु जब फिर वापिस मूल राग के स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है तब उसको अविर्भाव कहा जाता है। राग में तिरोभाव–आविर्भाव की क्रिया कुशल संगीतकार ही कर सकते हैं। इसी क्रिया को यदि उचित ढंग से न किया जाए तब राग की हानि हो सकती है। इसलिए इस क्रिया को करने से पहले विशेष तत्वों की तरफ ध्यान देना जरूरी है।

1. यह क्रिया केवल उस समय ही करनी चाहिए जब राग का स्वरूप पूरी तरह कायम हो गया हो अर्थात् जब श्रोताओं को पूर्ण रूप से राग की पहचान हो जाए।
2. यह क्रिया अधिकतर समप्रकृतिक राग द्वारा ही पेश करनी चाहिए।
3. यह क्रिया बहुत थोड़े समय के लिए होनी चाहिए नहीं तो मूल राग की हानि हो सकती है।
4. यह क्रिया करने से राग को कोई नुकसान नहीं होगा परन्तु अनुचित ढंग से करने से राग को हानि हो सकती है।

आविर्भाव का अर्थ है राग में मूल स्वरूप को प्रकट रूप में दिखलाना और तिरोभाव का अर्थ है कि किसी अन्य राग की छाया दिखला कर राग के स्वरूप को कुछ समय के लिए आच्छादित कर देना। यह प्रक्रिया वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए की जाती है, अतः सीमित समय के लिए ही प्रक्रिया को किया जाना चाहिए। अधिक देर तक तिरोभाव करने से मूल राग अपना प्रभाव खो सकता है। तिरोभाव के बाद पुनः जब मूल राग में आया जाता है, उसे आविर्भाव कहते हैं। तिरोभाव दो प्रकार से किया जाता हैः– (1) सम–प्रकृति राग की छाया दिखला कर (2) मूर्च्छना–भेद से आधार स्वर को परिवर्तित करके।

1. **सम–प्रकृति राग की छाया दिखलाकर** – किसी राग को गाते–बजाते समय जब राग का प्रभाव पूरी तरह से छा जाता है तब उस राग से मिलते–जुलते किसी अन्य राग के समान स्वर–समूह जो रागों में समान रूप से आते हों ऐसे स्वर समूहों को गायक या वादक वैचित्र उत्पन्न करने के लिए प्रयोग करता है, इससे मूल राग कुछ समय के लिए छिप जाता है, इस छिपन की क्रिया को तिरोभाव कहते हैं। जैसे मूल राग यदि भैरवी गाया या बजाया जा रहा हो तो निम्न प्रकार से होगा – सा रे सा, ग ऽ सा रे सा, धनि सा रे सा, सा रेग म, ग म गमपम ग म रे सा।

तिरोभाव – नि सा, ग म प, म प ग म निसाग सागम ग म प, म प ग म ग यहाँ तक भैरवी भी है और भीमपलासी भी है, अतः भैरवी में भीमपलासी का तिरोभाव होगा पर इस प्रक्रिया में वे स्वर–समूह नहीं लिए जा सकते जो केवल भीमपलासी के हों। जैसे 'म ग रे सा', क्योंकि से स्वर भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।
आविर्भाव –सारे सा, सा रेग म, प ध प म, ग म रे सा।

उत्तरांग में भैरवी में ही मालकौंस का तिरोभाव – ग म धनि सां, ध निध सां, सा ध म धनि सां, नि सा ग म ध नि सां, ग म ध म नि सां ऽ गं, यहाँ तक मालकौंस के स्वर–समूह हुए और साथ ही भैरवी के भी हैं, अतः कुछ समय के लिए भैरवी छिप गया है और मालकौंस उभर रहा है। यहाँ भी स्वर–समूह नहीं लगाए जा सकते हैं जो केवल मालकौंस के हों। जैसेः– 'मंगंसां' या 'सां धनिध म' ये स्वर–समूह भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरावलियों का प्रयोग नहीं कर सकते। आर्विभाव – सां रें सां, सां निध प ध प म, प म ग, सारेग म प, ग म रे सा।

यह तिरोभाव समान स्वरों वाले यानी किसी एक थाट के रागों में भी किया जा सकता है जैसे कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले अधिकांश रागों के पूर्वांग में तो भिन्नता है पर उत्तरांग में समान स्वर–समूहों का प्रयोग होता है। जैसे–कामोद, छायानट, गौड़–सारंग, हमीर। इनमें 'प ध मं प सां, सां ध प, मं प ध प नि ध सां, सां रें सां,' इन स्वरावलियों के प्रयोग से कल्याण–थाट के दोनों मध्यम वाले राग ही रहेंगे। अतः किसी भी राग में ऐसे स्वर–समूहों के प्रयोग से मिलते जुलते राग की छाया दिखला कर तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद पुनः मूल राग जो गाया जा रहा हो उस राग विशेष के स्वर लगा कर आर्विभाव करना होगा।

श्यामकल्याण व कामोद का अवरोह समान होने के कारण जब केवल अवरोह क्रम के स्वर समूहों का प्रयोग किया जाए तो दोनों राग होंगे अतः इन दोनों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद आरोह–क्रम के स्वर लगा कर अभीष्ट राग में आने की क्रिया को आविर्भाव कहा जाएगा।

2. **मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके** – मूल रूप से आधार स्वर षड्ज होता है, पर जब षड्ज के अतिरिक्त कुछ समय के लिए किसी अन्य स्वर को आधार स्वर यानी षड्ज मान लिया जाए तो मूल राग छिप जाएगा और उसके स्थान पर दूसरा राग दिखलाई देने लगेगा। जैसे कोमल–धैवत वाले ललित राग को गाते–बजाते समय यदि मध्यम को कुछ समय के लिए षड्ज मान लें तो ललित के स्वरों में तोड़ी राग दिखने लगेगा। जैसेः–

ललित – म मं म, ध ऽ मं म, नि ध नि मं ध मं मं
तोड़ी – सारे सा, ग ऽ रे ग रे सा, मं ग, मं रेगरे सा

यदि स्थिति चन्द्रकौंस गाते–बजाते समय होती है और यदि मध्यम को षड्ज मान लें तो मधुकौंस हो जाएगा। जैसेः–

चन्द्रकौंस – म ग म ध म, ग म ध नि सां, सां नि सां ध नि सां, सां गं सां
मधुकौंस – सानि सा ग सा, नि सा ग मं प, प मं प ग मं प, प नि प
चन्द्रकौंस – नि ध म ग म, ध नि सां नि सां
मधुकौंस – मं ग सा, नि सा ग मं प मं प

पाँच स्वरों वाले औडुव–जाति के रागों में यह क्रिया और भी आसान है। मालकौंस के षड्ज को आधार–स्वर मानने से मालकौंस, कोमल–गांधार को षड्ज मानने से बिलावल–थाट का दुर्गा, मध्यम को आधार मानने से धानी, कोमल धैवत को षड्ज मानने से भूपाली और कोमल–निषाद को

आधार–स्वर मानने से मधुमाद–सारंग के स्वरान्तर प्राप्त होंगे। अतः मालकौंस में इन चारों रागों का तिरोभाव किया जा सकता है या उपरोक्त पाँचों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है।

मूर्च्छना–भेद से तिरोभाव करने से रागों के विस्तार की पर्याप्त जानकारी हो जाती है क्योंकि सभी रागों की तानें एक–दूसरे राग में प्रयोग करने की नई दृष्टि आ जाती है। समर्थ कलाकार इस रिति से आधार–स्वर बदल–बदल कर कोई भी राग अधिक समय गाते बजाते देखे जाते हैं। बड़े गुलाम अली खाँ साहब तो मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके अविर्भाव–तिरोभाव की रीति का ही अधिक प्रयोग करते थे।

3.11 काकु

काकु का अर्थ है ध्वनि के उतार–चढ़ाव से भाव व्यक्त करना। संगीत में सभी स्वर आधार स्वर से ऊँचे या नीचे होने पर बनते हैं जिनसे संगीत निर्मित होता है। काकु से स्वरों का उतार–चढ़ाव या स्वरों का ऊँचा नीचापन प्रदर्शित होता है इसलिए काकु को संगीत की जननी कहा जाता है। समान शब्द होने पर भी यदि ध्वनि को भाव के अनुसार ऊँची या नीची कर दी जाए तो भाव में अन्तर आ जाता है। इसके अतिरिक्त यदि शब्दों के ठहराव में अन्तर कर दिया जाए तो भी अर्थ परिवर्तित हो जाता है। अर्ध–विराम से निम्नलिखित वाक्य का अर्थ ही विपरित हो गया है 'उसे रोको' मत आने दो', अब यहाँ रोको के बाद का अर्थ विराम 'मत' के पश्चात लगाने से अर्थ एकदम विपरित हो जाता है–'उसे रोको मत, आने दो'। इन दोनों वाक्यों में समान शब्द हैं केवल अर्धविराम के स्थान भेद से अर्थ परिवर्तित हो गया। अब काकु पर विचार करें। प्रश्नवाचक वाक्य में स्वर नीचे से ऊपर होता है जैसे यदि यह पूछना हो कि 'वह क्या है?' तो ध्वनि मध्य–षड्ज से पंचम तक उठती है इसके विपरित जब उत्तर देना हो ध्वनि मध्य–षड्ज से नीचे पंचम तक जाती है। कहने का भाव यह है कि यदि लिखा हुआ न हो केवल कहना हो तो समान वाक्य होते हुए केवल मध्य–षड्ज से मध्य–पंचम तक ध्वनि जाए तो उत्तर लगता है। यही काकु का प्रयोग। काकु का क्षेत्र विशाल है। शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर(भाग–2, पृ.–175) में छह प्रकार के काकुओं का उल्लेख किया है जैसे स्वर काकु, राग काकु, अन्य–राग काकु, देश काकु, क्षेत्र काकु और यन्त्र काकु। इसके अतिरिक्त भाव व्यक्त करने के लिए कभी किसी शब्द पर दबाव देने के लिए ज़ोर देना होता है। कभी कोमल भावनाओं को प्रदर्शित या व्यक्त करने के लिए ध्वनि को अपेक्षाकृत मुलायम बनाना होता है। इन दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे साहित्य में डराने के भाव को कठोर शब्दों से, वैसे ही संगीत में स्वर को बुलन्द करके या वाद्य में जोरदार प्रहार करके प्रदर्शित करते हैं। मधुरता के लिए कोमल भाव से शब्दों या स्वरों की सहायता से काकु के सहारे भाव व्यक्त किए जाते हैं।

3.12 तान

तान शब्द का अर्थ है बढ़ाना या फैलाना। दूसरे अर्थों में इसको विस्तार भी कहा जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा राग वाचक स्वर समूहों का द्रुत लय में अखंडित रुप में उच्चारण किया जाता है। किसी भी राग में तान उच्चारण करने के लिए उस राग के वादी–संवादी, आरोह–अवरोह और वर्जित स्वर, राग का विशेष चलन आदि की तरफ विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इन तत्वों का ध्यान तो आलाप बंदिश में भी रखना पड़ता है परन्तु तानों में विशेष नियमों का पालन करते हुए विभिन्न लयकारियां, जिससे सुन्दरता, विचित्रता आदि पैदा होती है, का विशेष महत्व दिखलाया जाता है।

तानों का प्रयोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन–शैलियों में ही किया जाता है। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता। ध्रुपद के तीसरे और चौथे चरण में नोम–तोम के आलाप में केवल गमक तान का ही प्रयोग किया जाता है और तानों का प्रयोग ध्रुपद में नहीं होता।

तानों के प्रकार – तानों के अनेक प्रकार हैं जैसे–अलंकारिक तान, गमक तान, कूट तान, मिश्र तान, छूट तान, जबड़े की तान, फिरत तान, दानेदार तान, हलक तान, झटके की तान, खटके की तान, बोल तान, सपाट तान, टप्पे अंग की तान, मूर्छना की तान, चक्की तान, तलवार की तान,

उखाड़–पछाड़ की तान, लड़त तान, पलट तान, सरगम तान, अचरक तान, वक्र तान, सरोक तान आदि।

तान रचना विधि – आरंभिक विद्यार्थी को पहले गुरु के द्वारा सिखाई साधारण तानों का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु धीरे–धीरे विद्यार्थी को राग के विशेष चलन, तानों के उचित नियमों के प्रयोग के बारे में जानकारी हो जाती है तो वह तानों की रचना स्वयं भी कर सकता है। तानों में लयकारी का विशेष महत्व है।

उत्तम तानों के सिद्धांत – आरंभिक विद्यार्थी को पहले चार वर्णो(स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण, संचारी वर्ण) के अलंकारों का अभ्यास होना चाहिए ताकि विद्यार्थी का गला स्वरों के उचित स्थान के उच्चारण में पक्का हो सके। इन अलंकारों को पहले ठाह लय में, फिर दुगुन और चौगुन, अठगुन लय में करवाया जाए।

आरंभ में केवल छोटी–छोटी तानों का ही अभ्यास कराया जाए। बाद में बड़ी तानें विद्यार्थी अपने आप गाने में समर्थ हो जाता है। तान का अभ्यास पहले कम लय में किया जाए ताकि स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग हो सके। तानों की संख्या तब ही बढ़ाई जाए जब पहली तानों पर पूरा अभ्यास हो जाए। अभ्यास के लिए अर्थात् गले की विशेष हरकत के लिए सपाट तान का अपना अलग ही योगदान होता है। अवरोहात्मक क्रम में सपाट स्वरों का उच्चारण मुश्किल लगता है क्योंकि इस क्रम में कंठ पर काबू तब ही हो सकता है जब स्वरों का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसी तानों में लयकारी धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए और साथ ही साथ सपाट स्वरों का अभ्यास मध्य षड्ज से लेकर तार सां तक न किया जाए बल्कि पहले सा से लेकर म तक एक पड़ाव देकर अभ्यास करने के बाद तार षड्ज तक पहुंचा जाए।

तान का अभ्यास करते समय षड्ज या राग में लगने वाले विशेष आरंभिक स्वर जैसे कल्याण में नि आदि से न किया जाए बल्कि ऋषभ से लेकर तार सप्तक के ऋषभ तक, गंधार से लेकर तार सप्तक के गंधार तक इत्यादि तानों का अभ्यास किया जाए, जिससे विद्यार्थी को स्वरों का बहुत पक्का अभ्यास हो जाएगा। इससे उसको किसी भी स्वर को सा मानकर गाने का अभ्यास हो जाएगा। मूर्च्छना पद्धति में भी ऐसा होता है। जब विद्यार्थी किसी भी स्वर को सा मानकर आरोह–अवरोह करेगा तब स्वरों के स्थानों में अंतर आना स्वाभाविक है। चाहे उसने उच्चारण तो सा रे ग म प ध नि आदि का ही किया है परन्तु हर बार षड्ज बदलने से मूल स्वर समूह में अंतर आ जाएगा। जिससे विभिन्न स्वरों के उच्चारण में फिर कोई मुश्किल नहीं आएगी।

आरंभ में ऐसे रागों की तानें करवानी चाहिए जिनमें शुद्ध स्वर प्रयोग हो, जिनका चलन सरल और सीधा हो और जिनमें संवाद ज्यादा हो। जैसे कल्याण राग इत्यादि इसमें तीव्र मध्यम के अलावा बाकी सभी स्वर शुद्ध लगते हैं और इसका चलन भी सीधा है। ऐसे रागों में तानों की तैयारी के बाद फिर किसी और राग की तानें की जाए। पहले वक्र जाति वाली रागों की तानों की तैयारी न की जाए। पहले औड़व जाति के सरल रागों की तानें जैसे भूपाली, देशकार इत्यादि रागों में ही उच्चारी जाए क्योंकि शुद्ध स्वरों पर काबू के बाद ही कोमल स्वर उच्चारण में सफलता मिलेगी। बोल तानों को गाने के लिए पहले बंदिश के बोलों का अभ्यास सरगम पर ही किया जाए बाद में बंदिश के बोलों की तान अर्थात् बोलतान या आकार के द्वारा तान का अभ्यास किया जाए।

आदत, जिगर, हिसाब वैसे तो इन तीनों का प्रयोग संगीत के हर पहलू में रहता है परन्तु तानों में इस संबंध में विशेष चौकन्ने रहना पड़ता है जैसे विशेष लयकारी के लिए उत्तम अभ्यास अर्थात् आदत, स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग अर्थात् जिगर और मात्राओं की विशेष गिनती अर्थात् हिसाब। उत्तम तानों के लिए गायक के विशेष गुण जैसे–बैठने का उचित ढंग, जिससे फेफड़ों में कोई रुकावट न हो और चेहरे पर भाव पेश करने का ढंग आदि होना भी आवश्यक है। स्वर, लय और ताल की विशेष जानकारी आत्मविश्वास आदि तत्वों का ध्यान रखना जरुरी है क्योंकि ऐसे तत्वों के बिना तानों का उचित रुप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, जिसके फलस्वरुप गायक अपने गायन से इसकी उत्पत्ति करने में असमर्थ हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. मार्गी संगीत के विषय में संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

3. भारतीय संगीत में काकु से आप क्या समझते हो? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. रागों के चलन में तिरोभाव एवं आविर्भाव का क्या महत्व है?बताइए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. गान लोक रूचि के अनुसार न होकर मोक्ष प्राप्ति का साधन था।
2. देशी संगीत का मूल उद्देश्य लोकरंजनकारी रहा है।
3. संगीत रत्नाकर में 6 प्रकार के काकुओं का वर्णन मिलता है।
4. तिरोभाव की क्रिया समप्रकृति रागों को छोड़ अन्य रागों में की जाती है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. ध्रुपद गायन में स्वरों को आन्दोलित करते हुए _______तानों का प्रयोग होता है।
2. निबद्ध गान में वे संगीतमयी रचनाएं आती है जो ________बद्ध होती हैं।
3. मो0 करम इमाम ने अपने ग्रंथ में नायकों की संख्या_________मानी है।
4. मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य _________प्राप्ति रहा है।

3.13 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, नायक, गायक, गीत, तिरोभाव, अविर्भाव, काकु और तान के बारे में जान चुके होंगे। संगीत एवं धर्म का आरम्भ से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। संगीत की दो धाराओं मोक्ष प्राप्ति एवं लोक मनोरंजनकारी क्रमशः मार्गी एवं देशी संगीत के रूप में कालान्तर से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में प्रचलन में रही है। मार्गी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा का निर्वाह करते हुए गायक, नायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि ने प्रत्येक काल में इस कला को समृद्ध करते हुए अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। इनमें वाग्गेयकार सम्पूर्ण रूप से कला निष्णात होते रहे हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग विचिल अमूल्य देन है। राग का मूल उद्देश्य रंजकता उत्पन्न करना है। रंजकता वह है जो आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करे। राग में आलाप–ताल एवं आविर्भाव तथा तिरोभाव के प्रयोग एवं क्रियाओं द्वारा राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। ताल द्वारा राग में एक चमत्कार उत्पन्न भी होता है। वर्तमान में राग में आविर्भाव व तिरोभाव एक अनिवार्य क्रिया बनती जा रही है तथा आलाप प्रधान संगीत ताल प्रधान संगीत के रूप में विकसित होता जा रहा है। इसी शब्दों में कह सकते हैं कि जन रूचि परिवर्तित हो गई है। समय के साथ संगीत के विभिन्न पक्षों में बदलाव आया तथा गायकी परिवर्तित होती गई।

3.14 शब्दावली

1. **श्रुति** – कानों से सुनी जा सकने वाली सूक्ष्म ध्वनि।
2. **मूर्च्छना** – सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।
3. **गमक** – आन्दोलित बलयुक्त स्वर का प्रयोग।
4. **जाति गान** – ध्रुपद व प्रबन्ध गायन के पूर्व एक प्राचीन गान प्रकार।
5. **ग्रह एवं अंश स्वर** – संगीत रचना का सबसे प्रारम्भिक स्वर ग्रह स्वर है तथा इसके पश्चात महत्वपूर्ण स्वर अंश स्वर है।
6. **खटका** – किसी स्वर को पास वाले दूसरे स्वर से अल्प स्पर्श यदि जोरदार विधि से हो तो वह खटका कहलाता है।
7. **मुर्की** – स्वरों का छोटा सा समूह जिससे तेज गति से लिया जाता है उसे मुर्की कहते हैं।
8. **अलंकार** – स्वरों का ऐसा समूह जो गीत को रंजकता प्रदान करता है।
9. **आलाप** – स्वरों द्वारा आकार में विस्तार करना जिससे राग का विस्तार होता है।

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. गमक 2. ताल 3. 12 4. मोक्ष

3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. सर्राफ, डॉ0 रमा, (2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
4. राजन, डा0 रेणु, (2010) भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्रीः

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति, (1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, (1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रागों में आविर्भाव, तिरोभाव के प्रयोग के महत्व को समझाते हुए विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या करते हुए विस्तार पूर्वक इनकी विशेषताओं को समझाइए।

इकाई 4 – भारतीय संगीत में थाट पद्धति

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट
4.4 पं. व्यंकटमुखी के 72 थाट
4.4.1 थाट रचना विधि
4.5 पं वि.नारायण भातखंडे के दस थाट
4.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाट एवं उनके स्वर
4.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–222) पंचम सेमेस्टर की चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न संगीतज्ञ वर्ग एवं शैलियों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविर्भाव, तिरोभाव, काकु और तान से परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में बताया गया है। रागों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में थाट/मेल पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस इकाई में मेल अथवा थाट के रचना नियमों को भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मेल अथवा थाट के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न रागों के वर्गीकरण की पद्धति को समझ सकेंगे। वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धतियों में उत्तर भारतीय संगीत में थाट एवं दक्षिण भारतीय संगीत में मेल वर्गीकरण का प्रयोग होता है। इस इकाई के अध्ययन से आप मेल अथवा थाट के रचना नियमों के आधार पर रागों को उसमें प्रयुक्त कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- बता सकेंगे की वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धति "थाट अथवा मेल वर्गीकरण" वैज्ञानिक एवं सरल है।
- समझा सकेंगे कि थाट एवं मेल वर्गीकरण पद्धति के अन्तर्गत रागों को किन आवश्यक नियमों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
- बता सकेंगे कि थाट अथवा मेल वर्गीकरण के अन्तर्गत उत्तरी एवं दक्षिणी पद्धति में कौन से प्रमुख रागों को रखा गया है।
- बता सकेंगे कि उत्तरी थाट पद्धति एवं दक्षिणी मेल पद्धति के अन्तर्गत दोनों की वर्गीकरण पद्धति के आधार पर एक नवीन पद्धति का निर्माण किया जा सकता है। जिसमें कुछ ऐसे रागों को भी स्थान प्राप्त हो जो इन पद्धतियों में प्रयुक्त नहीं हो सकते हों।

4.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट

ग्राम मूर्च्छना पद्धति के दुर्बोध होने पर मध्य युग में स्वर साम्य के आधार पर राग–वर्गीकरण प्रचार में आया। सर्वप्रथम विजय नगर के मन्त्री माधवाचार्य विद्याचरण ने तत्कालीन 50 रागों को 15 मेलों में वर्गीकृत किया। विजय नगर के ही रामामात्य ने 'स्वरमेल–कलानिधि' में 20 मेल, सोमनाथ ने 'राग विबोध' में 23 मेल, व्यंकटमुखी ने 'चतुर्दण्डी–प्रकाशिका' में अधिकतम 72 मेल बनाने की विधि देकर 19 मेल स्वीकार किए। उत्तर में 'राग–तरंगिणी' में कवि लोचन ने 12 संस्थानों(मेलों) में 75 रागों को स्वर–साम्य के आधार पर वर्गीकृत किया। पुण्डरीक विट्ठल ने 'सद्राग–चन्द्रोदय' में 19 मेल और 'राग–मंजरी' में 20 मेल स्वीकार किए हैं। भावभट्ट ने 'अनूप–संगीत–रत्नाकर' में 20 मेल माने हैं। मेलों की सबसे कम संख्या श्रीकण्ठ ने 'रस कौमुदी' में 9 मानी है। भातखण्डे जी ने उत्तरी–संगीत के लिए अधिकतम 32 मेलों या थाटों में से 10 मेल ही प्रयोग में स्वीकार किए हैं।

ठाठ शब्द से ही ठाट या थाट बना है। थाट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सोमनाथ ने राग–विबोध में किया है। थाट–पद्धति–वर्गीकरण का अर्थ भी स्वर–साम्य के आधार पर रागों का वर्गीकरण होता है यानी समान स्वरों वाले राग एक वर्ग में रखे जाते हैं। किसी स्वर के परिवर्तन के साथ ही थाट भी बदल जाता है। जैसे शुद्ध स्वरों वाले सभी राग बिलावल थाट के अन्तर्गत रखे जाते हैं। शुद्ध–मध्यम के स्थान पर तीव्र–मध्यम के प्रयोग से बिलावल के स्थान पर वो थाट, कल्याण हो जाएगा क्योंकि कल्याण थाट में तीव्र–मध्यम होता है।

थाट शब्द सितार आदि पर्दे वाले वाद्यों से सम्बन्धित है। जो राग बजाना होता है उससे पहले उस राग विशेष में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को, पर्दों को खिसका कर स्थापित करना होता है। यही ठाठ बाँधना कहलाता है। ठाठ का अर्थ है ढाँचा या फ्रेम। ठाठ तैयार होने पर उस ठाठ में प्रयुक्त स्वरों से सम्बन्धित

सभी राग बजाए जा सकते हैं। यानी निश्चित स्वरों वाले रागों का ढाँचा बन जाने पर बिना पर्दों को इधर–उधर किए हुए उन्हीं पर समान स्वरों वाले राग बज सकते हैं। सरस्वती वीणा आदि पर स्थिर पर्दे होते हैं इसलिए ऐसे वाद्यों को अचल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है। जिनमें पर्दे खिसकाने पड़ते हैं उन्हें चल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है।

4.4 पं0 व्यंकटमुखी के 72 थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि संगीत में समय–समय पर अलग–अलग तरह की शैलियों का प्रचार हुआ और उनको भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न वर्गीकरण के अंतर्गत बांटा गया। जैसे रागों का जाति वर्गीकरण, ग्राम वर्गीकरण, शारंगदेव 10 विधि वर्गीकरण, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग मेल वर्गीकरण आदि।

मेल वर्गीकरण के अंतर्गत मेलों की संख्या के विषय में अनेक मत होने के कारण यह पद्धति धीरे–धीरे समाप्त हो गई। परन्तु 17वीं सदी में दक्षिण के निवासी पं0 व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डिप्रकाशिका नामक ग्रंथ में गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक से अधिक से अधिक 72 मेल या थाट बन सकते हैं। मेलों या थाटों की क्रिया को समझने के लिए इसे मुख्य रूप से चार भागों में बांटा जा सकता है :–

1. थाट की परिभाषा
2. थाट की विशेषताएं
3. स्वरों की विशेषताएं
4. थाट–रचना–विधि

थाट की परिभाषा – सात स्वरों के क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, को थाट या मेल कहा जाता है। मेल या थाट एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं क्योंकि प्रामाणिक संगीत ग्रंथों में वर्गीकरण की इस श्रेणी के लिए मेल शब्द का प्रयोग किया गया है। अभिवनव राग मंजरी में मेल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–"मेल स्वर समूहः स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान्"

मेल या थाट की विशेषताएं – पं. व्यंकटमखी ने यह स्वीकार किया कि थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए क्योंकि यदि वह सम्पूर्ण ही नहीं होगा तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे रखा जा सकेगा। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि सम्पूर्ण से भाव 7 स्वरों से है और यह सात स्वर किसी स्वर के दो रूपों को मिलाकर न हों। स्पष्ट अर्थों में स रे ग म प ध नि इनमें कोई भी स्वर को छोड़ा नहीं जा सकता। थाट के सात स्वर क्रमानुसार ही होने चाहिए, जैसे – स रे ग म प ध नि

एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग नहीं किए जा सकते क्योंकि दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से थाट सम्पूर्ण नहीं हो सकता। परन्तु पं.व्यंकटमुखी के अनुसार एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग किए जा सकते हैं। दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से किसी अन्य स्वर को तो छोड़ना ही पड़ेगा, जिससे थाट के सात स्वरों के क्रम का प्रयोग भंग हो जाएगा। इस समस्या का समाधान करने के लिए पं. व्यंकटमुखी ने एक स्वर को दो नाम देकर किया, जिससे थाट का नियम भी भंग नहीं हुआ। इसके लिए व्यंकटमुखी की स्वर तालिका देखनी जरूरी है, जिसका वर्णन स्वरों की विशेषताओं में किया गया है।

- थाट या मेल में केवल आरोह का होना ही जरूरी होता है क्योंकि उसके आरोह–अवरोह दोनों के स्वर एक जैसे ही होते हैं।
- थाट गाए/बजाए नहीं जाते इसलिए रंजकता होना जरूरी नहीं है।
- थाट या मेल का नाम उसके अंतर्गत रखे गए प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर रखा गया है। जैसे – बसंत, भैरवी, देशाकसी, नाट, पंतुवली, सिंहरव, कल्याणी आदि(पं. व्यंकटमखी के अनुसार)। कल्याण, तोड़ी, भैरव, भैरवी, बिलावल, काफी, खमाज, आसावरी, मारवा, पूर्वी(पं. भातखण्डे के अनुसार)।

स्वरों की विशेषताएं – स्वरों की विशेषताएं देखने के लिए पं. व्यंकटमुखी की स्वर तालिका को समझना आवश्यक है।

हिन्दुस्तानी स्वर	पं. व्यंकटमुखी के स्वर
स	स
रे कोमल	रे शुद्ध
रे शुद्ध	पंचश्रुति रे या शुद्ध ग
ग कोमल	षट्श्रुति रे या साधारण ग
ग शुद्ध	अंतर ग
म शुद्ध	म शुद्ध
म तीव्र	प्रति म
प	प
ध कोमल	ध शुद्ध
ध शुद्ध	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि
नि कोमल	षट्श्रुति ध या कैशिक नि
नि शुद्ध	काकली नी

उपर्युक्त स्वर तालिका देखने से यह पता चलता है कि व्यंकटमुखी ने भी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की तरह कुल 12 स्वर ही माने हैं, अन्तर केवल यह है कि पंडित व्यंकटमुखी जी ने एक स्वर के दो नाम रखे।

1. जैसे अगर किसी थाट में दोनों रे अर्थात शुद्ध रे और पंचश्रुति रे इकट्ठे प्रयुक्त होते हैं तो पहला ऋषभ ही रहेगा और दूसरा रे शुद्ध गंधार कहलाएगा।
2. जहां पंचश्रुति ऋषभ होगा वहां षट्श्रुति ऋषभ नहीं होगा।
3. जहां षट्श्रुति ऋषभ होगा वहां साधारण ग नहीं होगा।
4. जहां साधारण ग होगा वहां अन्तर ग नहीं होगा।
5. जहां शुद्ध ध होगा वहां पंचश्रुति नि नहीं होगा।
6. जहां शुद्ध नि होगा वहां षट्श्रुति ध या कैशिक नि नहीं होगा।
7. जहां कैशिक नि होगा वहां काकली नि नहीं होगा।

4.4.1 मेल या थाट रचना–विधि – व्यंकटमुखी ने एक सप्तक के 12 स्वरों सा रे रे ग ग म प ध ध नि नि सां में से तीव्र म को थोड़े समय के लिए निकाल दिया और 12 की संख्या पूरी करने के लिए तार सा जोड़ दिया। इस तरह 12 स्वरों को दो बराबर भागों में बांट लिया। पहले भाग को पूर्वांग और दूसरे भाग को उत्तरांग कहा गया।

पूर्वांग	उत्तरांग
सा रे रे ग ग म	प ध ध नि नि सां

सप्तक में तार सा जोड़ने से स्वरों की गिनती आठ हो गई। थाट रचना में सप्तक के दोनों भागों में चार–चार स्वर होने आवश्यक हैं और उन चार–चार स्वरों में स और म दोनों स्वर पूर्वांग में और प और तार स उत्तरांग में होना जरूरी है।

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे रे म	1. प ध ध सां
2. सा रे ग म	2. प ध नि सां
3. सा रे ग म	3. प ध नि सां
4. सा रे ग म	4. प ध नि सां
5. सा रे ग म	5. प ध नि सां
6. सा ग ग म	6. प नि नि सां

इस तरह सप्तक के प्रत्येक भाग में छः–छः नए स्वर स्वरूप प्राप्त हुए। पूर्वांग के प्रत्येक स्वर समूह को बारी–बारी उत्तरांग के स्वर समूहो से मिलाया जाएगा अर्थात् केवल एक स्वर समूह लेना है और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से मिलाना है। जैसे–

	पूर्वांग	उत्तरांग
1.	सा रे रे म	प ध ध सां
2.	सा रे रे म	प ध नि सां
3.	सा रे रे म	प ध नि सां
4.	सा रे रे म	प ध नि सां
5.	सा रे रे म	प ध नि सां
6.	सा रे रे म	प नि नि सां

इस तरह पूर्वांग का तो पहला स्वर समूह लिया गया और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह के साथ जोड़ा गया। उसके पश्चात् इसी तरह पूर्वांग के दूसरे स्वर समूह को लिया जाएगा और उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से साथ जोड़ा जाएगा। इस तरह छः स्वर समूहों को बार–बार जोड़कर 6 X 6 = 36 थाट मिलेंगे। यह विधि तीव्र म स्वर लगाकर ही करनी है अर्थात शुद्ध म की जगह तीव्र म रहेगा क्योंकि उसको पहले स्वर–समूह से निकाल दिया गया था। जैसे –

	पूर्वांग	उत्तरांग
1.	सा रे रे म॑	प ध ध सां
2.	सा रे रे म॑	प ध नि सां
3.	सा रे रे म॑	प ध नि सां
4.	सा रे रे म॑	प ध नि सां
5.	सा रे रे म॑	प ध नि सां
6.	सा रे रे म॑	प नि नि सां

यहां उत्तरांग के स्वरों में कोई अन्तर नहीं आएगा। पूर्वांग में शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया गया है। इस तरह इन स्वर समूहों से भी 36 थाट मिलेंगे। 36 थाट शुद्ध मध्यम के साथ और 36 थाट तीव्र मध्यम के साथ कुल मिलाकर 36+36=72 मिलेंगे। इस तरह व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा 72 थाटों की रचना की। दक्षिण वालों ने 72 थाटों में से कुल 19 ही चुने, जिसके अंतर्गत अपने रागों का वर्गीकरण किया।

क्रम सं0	मेल–नाम	स्वर
1	मुखारी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे रे म प ध ध
2	सामवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
3	भूपाल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
4	हेजुज्जी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे रे म प ध ध
5	बसन्तभैरवी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
6	गौल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि

7	भैरवी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
8	आहीरी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
9	श्री (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
10	कांभोजी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
11	शंकराभरण (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
12	सामन्त (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा रे ग म प नि नि
13	देशाक्षी (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा ग ग म प ध नि
14	नाट (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा ग ग म प नि नि
15	शुद्धवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे रे म प ध नि
16	पन्तुवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
17	शुद्धरामक्री (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
18	सिंहरव (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
19	कल्याणी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
शब्द संक्षेप :– हि0=हिन्दुस्तानी, साधा=साधारण, अन्त=अन्तर, वरा=वराली, काक=काकली, कैशि=कैशिक, पंच=पंचश्रुतिक, षट=षटश्रुतिक		

4.5 पं वि.नारायण भातखंडे के दस थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि रागों को भिन्न–भिन्न समयों में विभिन्न वर्गीकरणों में बांटा गया। जैसे–दस विधि राग वर्गीकरण, शुद्ध–छायालग–संकीर्ण वर्गीकरण, राग–रागिनी वर्गीकरण आदि। 17वीं सदी में व्यंकटमुखी ने गणित के द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक में 72 थाट उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु पंडित भातखण्डे जी ने 10 थाट चुने, जिसके अंतर्गत सारे रागों का वर्गीकरण किया।

पं. भातखण्डे जी ने पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों में से हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के लिए उपयुक्त दस थाट स्वीकार किए जो निम्नलिखित हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, काफी, आसावरी, मारवा, पूर्वी और तोड़ी। सबसे पहले इन थाटों का चयन किसने किया? इस विषय में भी माना जाता है कि भातखण्डे जी ने ही सर्वप्रथम इन्हें निश्चित किया। किन्तु आचार्य बृहस्पति का कहना है कि रामपुर के पुस्तकालय में प्राप्त 'सरमाय–ए–इशरत्' नाम की पुस्तक जो सन् 1858 ई. में लिखी गई है, उसमें इन्हीं दस थाटों का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। इस पुस्तक का उल्लेख भातखण्डे जी ने भी किया है अतः यह कहा जा सकता है कि कदाचित् भातखण्डे जी को इन दस थाटों का विचार इसी पुस्तक से मिला होगा। जो भी हो लेकिन इनका प्रचार तो निश्चित रूप से भातखण्डे जी ने ही किया है।

थाट परिभाषा – थाट या मेल एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। सात स्वरों का वह क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, थाट कहलाता है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में थाट को जनक(जन्म देने वाला) और रागों को जन्य(जन्म लेने वाला) कहा गया है। रागों के विशेष स्वर समूहों को देखकर विशेष थाट के अंतर्गत रखा जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में थाटों की संख्या दस मानी गई है और वह हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, तोड़ी। क्योंकि थाट उस स्वर–समूह रचना को कहा जाता है जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो इसलिए थाट के विशेष नियम बनाए गए हैं।

थाट के नियम :–

1. थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए। यदि वह स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा अर्थात् उस स्वर समूह में 7 स्वर नहीं प्रयोग किए जाएंगे तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे माना जा सकता है।
2. थाट में सात स्वरों को क्रमानुसार होना चाहिए जैसे स के बाद रे और रे के बाद ग इत्यादि।
3. थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।
4. थाट को गाया–बजाया नहीं जाता इसलिए, इसमें रंजकता का होना आवश्यक नहीं।
5. थाट में एक स्वर के दो रूप(शुद्ध और विकृत) एक साथ नहीं हो सकते क्योंकि ऐसा करने से किसी और स्वर को वर्जित करना पड़ेगा, जो कि थाट के नियम के विरूद्ध है। किन्तु दक्षिणी पद्धति में ऐसा कर लिया जाता है। एक स्वर के दो रूप एक साथ प्रयोग करने के साथ ही उनका थाट सम्पूर्ण रहता है क्योंकि उन्होंने एक स्वर के दो या दो से ज्यादा नाम दिए हैं। उदाहरण के लिए अगर किसी थाट में दोनों ऋषभ अर्थात शुद्ध रे तथा चतुश्रुतिक रे प्रयोग किए जाएंगे तो पहले रे ऋषभ ही रहेगा और दूसरे को शुद्ध गन्धार कहा जाएगा। इस प्रकार राग की दृष्टि में तो हो जाता है परन्तु असल में नहीं होता क्योंकि नाम बदलने से स्वर–स्थान नहीं बदलते।
6. थाट का नाम उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रखा गया है, जैसे–नि रे ग म॑ प ध नि सां ऐसे स्वर समूह को कल्याण थाट कहा गया है क्योंकि कल्याण में तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार और रागों के नाम जिनके स्वर समूह थाट के स्वर समूहों के अनुसार थे, अर्थात् विशेष विशेषताएं थी, उन्हें रागों का नाम दिया गया है। जैसे–खमाज, काफी, भैरव, भैरवी आदि। जिन रागों के नाम के आधार पर थाट का नामकरण हुआ, उनको आश्रय राग कहा गया। थाटों की संख्या कुल 10 मानी गई है। इसलिए आश्रय राग भी 10 ही हैं।

4.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के थाट और उसके स्वर :–

1. **बिलावल थाट** : इसमें स्वर शुद्ध ही लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
2. **कल्याण थाट** : इसमें मध्यम तीव्र लगेगा बाकी सारे स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म॑ प ध नि।
3. **खमाज थाट** : इस थाट में नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
4. **काफी थाट** : इस थाट में ग व नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
5. **आसावरी थाट** : इसमें ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
6. **भैरवी थाट** : इसमें रे ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
7. **भैरव थाट** : इस थाट में रे ध स्वर कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
8. **पूर्वी थाट** : इसमें रे ध कोमल व तीव्र म प्रयोग किया जाता है। स रे ग म॑ प ध नि।
9. **मारवा थाट** : इस थाट में रे कोमल, म तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म॑ प ध नि।
10. **तोड़ी थाट** : इस राग में रे ध कोमल और मध्यम तीव्र लगता है। स रे ग म॑ प ध नि।

इन थाटों में दिए गए स्वरों की तुलना उन विशेष रागों के स्वरों से न की जाए क्योंकि रागों में स्वरों का चलन विशेष राग में वर्जित स्वर, विशेष स्वर का प्रयोग आदि होता है। परन्तु थाट में ऐसा नहीं होता है। यह थाट का नियम माना जाता है।

<u>दस थाटों की वैज्ञानिकता</u> – भातखण्डे जी ने तो केवल इतना ही कहा कि व्यंकटमुखी के 72 मेलकर्ताओं में से हिन्दुस्तानी–पद्धति के लिए यही दस थाट उपयुक्त हैं। आगे चलकर प्रो0 ललित किशोर सिंह जो स्वयं भौतिक–शास्त्र के ज्ञाता थे, ने इन दस थाटों पर ध्वनि–विज्ञान के नियमों के अनुसार इनकी वैज्ञानिकता पर विशद् विचार किया और यह सिद्ध किया कि केवल यही दस थाट 72 मेलों में से वैज्ञानिक नियमों पर खरे उतरते हैं। यहाँ इसी बिन्दु पर कुछ विचार किया जाएगा।

1. सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों में से थाट के लिए सात स्वर क्रमानुसार होने चाहिए।
2. प्रत्येक थाट में षड्ज, पंचम के अतिरिक्त दोनों मध्यमों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
3. <u>रे</u> रे <u>ग</u> ग <u>ध</u> ध <u>नि</u> नि में से दो पूर्वांग और दो उत्तरांग में होने चाहिए।
4. शुद्ध और विकृत रूपों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
5. उस थाट में प्रत्येक स्वर का 'षड्ज–मध्यम' या 'षड्ज–पंचम' संवाद होना आवश्यक है।
6. तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध निषाद तथा साथ ही कोमल रे या शुद्ध गंधार का होना अति आवश्यक है।

<u>राग और थाट की तुलना</u> :–

1. प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट के अंतर्गत माना गया है, जबकि थाट की उत्पत्ति सात स्वरों के समूह से होती है जिसमें स्वर में एक स्वर का कोई भी रूप(शुद्ध या विकृत) प्रयोग हो सकता है।
2. राग में कम से कम पांच और ज्यादा से ज्यादा सात स्वर प्रयोग किए जा सकते हैं, परन्तु थाट में सात स्वरों का होना जरूरी है। अगर थाट स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा तो इसके अंतर्गत सम्पूर्ण जाति के राग को कैसे रखा जा सकता है।
3. राग में स्वरों का क्रमवार होना जरूरी नहीं है। राग के चलन अनुसार विभिन्न स्वर समूहों अनुसार, वादी–संवादी के अनुसार राग में स्वरों का प्रयोग किया जाता है। थाट में सात स्वर समूहों को क्रमानुसार होना जरूरी है। जैसे – सा रे ग म प ध नि।
4. राग में आरोह–अवरोह दोनों का होना जरूरी है। केवल आरोह में राग की पहचान नहीं हो सकती क्योंकि राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती अलग–अलग भी हो सकती है। जैसे किसी राग के आरोह में अगर सात स्वर लगते हैं तो यह जरूरी नहीं कि उसके अवरोह में भी सात स्वर ही लगेंगे अर्थात उसके अवरोह में छः या पांच स्वर भी लग सकते हैं। थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।
5. राग में रंजकता का होना जरूरी है क्योंकि राग का मुख्य उद्देश्य रंजकता को उत्पन्न करना है परन्तु थाट में रंजकता का होना जरूरी नहीं है क्योंकि थाट गाया–बजाया नहीं जाता।
6. राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती भिन्न होने के कारण राग की मुख्य तीन जातियां हैं– सम्पूर्ण, षाडव और औड़व। परन्तु थाट की जातियां नहीं होती क्योंकि उसके आरोह के स्वरों में कोई भी स्वर वर्जित नहीं किया जाता।
7. राग स्वतंत्र होते हैं, अर्थात उनको कोई भी नाम दिया जा सकता है। थाटों का नामकरण उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर किया गया है। जैसे काफी, खमाज, बिलावल, भैरव, भैरवी आदि यही नाम रागों के भी हैं और यही थाटों के भी।
8. रागों की संख्या निश्चित नहीं है। राग नए बनते रहते हैं परन्तु थाटों की संख्या हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार 10 है। इन 10 थाटों के अन्तर्गत ही सभी रागों को रखा जाता है।
9. थाट को जनक और उसके अंतर्गत माने गए रागों को जन्य कहा गया है।

4.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति

जिस प्रकार व्यंकटमुखी ने गणितानुसार 72 थाटों की रचना की, उसी प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति के स्वरों में वह विशेषता नहीं है जो कर्नाटकी संगीत–पद्धति में है। अर्थात् एक स्वर के दो नाम नहीं हैं। स्वरों को क्रमानुसार रखने के लिए एक स्वर के दो रूप(शुद्ध तथा विकृत) नहीं हो सकते। इसलिए इस पद्धति के अनुसार गणित द्वारा 72 थाट न बनकर केवल 32 थाट बन सकते हैं।

सप्तक का शुद्ध मध्यम वाला 12 स्वरों का समूह स रे रे ग ग म प ध ध नी नी सां है और इसके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध भागों के स्वर–समूह इस प्रकार होंगेः–

पूर्वार्द्ध	उत्तरार्द्ध
(सा रे रे ग ग म)	(प ध ध नि नि सां)
(1) सा रे ग म	(1) प ध नि सां
(2) सा रे ग म	(2) प ध नि सां
(3) सा रे ग म	(3) प ध नि सां
(4) सा रे ग म	(4) प ध नि सां

पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के स्वर – समूहों को मिलाने से हमको कुल 4X4=16 थाट प्राप्त होंगे। ये 16 थाट शुद्ध मध्यम के और इसी प्रकार 16 थाट तीव्र मध्यम के होंगे। अब कुल मिलाकर 16+16=32 थाट हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के स्वरों के अनुसार बन सकते हैं।

उपर लिखे थाट गणित द्वारा निकाले गए हैं, पर इनको हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में मान्यता प्राप्त नहीं है। केवल इनमें से 10 थाटों को हिन्दुस्तानी संगीत ने ग्रहण किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में केवल 10 थाट माने जाते हैं और उन्हीं 10 थाटों के अन्तर्गत सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये दस थाट हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, काफी, पूर्वी, मारवा, भैरव, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी। आधुनिक समय में इन 10 थाटों पर खूब वाद–विवाद चल रहा है। कुछ लोगों का विचार है कि बहुत से राग इन थाटों के अन्तर्गत नहीं आ सकते, इसलिए इन थाटों की संख्या बढ़ानी चाहिए। परन्तु अभी तक कोई ऐसा सुझाव नहीं मिल सका है जो सर्वमान्य हो।

इसी प्रकार कर्नाटकी संगीत–पद्धति में 72 थाट व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा निकाले हैं पर उन्हें शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग तो थाट में आरोह–अवरोह दोनों रखकर गणित द्वारा कर्नाटकी पद्धति के अनुसार कुल 72X72=5184 थाट बनाते हैं। परन्तु ये सब शास्त्रीय नहीं हैं। 72 थाटों में से केवल 19 थाट दक्षिणी संगीत–पद्धति में माने जाते हैं, जिनके अन्तर्गत ही वहाँ के सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये 19 मेल अथवा थाट (1)मुखारी (2)भूपाल (3)सालबरीली (4)गौल (5)अहोरी (6)बसन्तभैरवी (7)श्रीराग (8)भैरवी (9)कांभोजी (10)शंकराभरण (11)सामन्त (12)हैजुज्जी (13)नाट (14)शुद्धबराली (15)देशाक्षी (16)पंतुवराली (17)सिंहरव (18)शुद्ध रामक्रिया (19)कल्याणी, कर्नाटकी संगीत में प्रचलित हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. पं. भातखंडे के दस थाटों की वैज्ञानिकता को समझाइए।
2. हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाटों में लगने वाले स्वरों को बताइए।
3. राग एवं थाट के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. मध्ययुग में मेल अथवा थाट वर्गीकरण का क्या अस्तित्व था।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. संगीत रत्नाकर में 21 मेल माने गए हैं।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में 72 थाटों में से 19 का ही प्रयोग होता है।
3. थाट पद्धति के नियमानुसार थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए।

4. मारवा थाट में मध्यम स्वर शुद्ध होता है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. रे ग ध नि स्वर कोमल ___________ थाट में होते हैं।
2. हिन्दुस्तानी संगीत का शुद्ध ग दक्षिणी संगीत के ________ग के समान है।
3. पं. व्यंकटमुखी ने _______________ग्रन्थ में 72 थाटों की रचना की है।
4. रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधी में __________मेलों की रचना बताई है।

4.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में जान चुके होंगे। रागों का पारिवारिक वर्गीकरण मध्ययुग की उपज है। रागों के वर्गीकरण के मेल राग वर्गीकरण की पद्धति दक्षिणी संगीत की महत्वपूर्ण देन है। रामामात्य, लोचन, विट्ठल, सोमनाथ, व्यंकटमुखी इत्यादि पण्डित इसी पद्धति के समर्थक रहे। आरम्भ में 15 मेल माने गए तथा बाद में पं. व्यंकटमुखी ने सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर स्थानों के आधार पर 72 मेलों की रचना की। उत्तरी संगीत में मेल राग वर्गीकरण मान्य नहीं रहा। वर्तमान शताब्दी में पं. भातखंडे जी ने 72 मेलों से वर्तमान आवश्यकतानुसार केवल 10 मेलों या थाटों को पर्याप्त माना। आधुनिक काल में प्रचलित राग वर्गीकरण पद्धतियों में थाट पद्धति ही व्यापक तथा सुविधाजनक होने के कारण उपयुक्त मानी जाती है। पं. वि.नारायण भातखंडे जी ने संगीत के सिद्धांतों व क्रियात्मक रागों के स्वर रूपों को समझाते हुए कहा कि आवश्यकतानुसार गुणि जनों की राय से अधिक थाटों की संख्या निश्चित की जा सकती है। अतः इन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। आप थाट पद्धति के नियमों से भी परिचित हो चुके होंगे।

4.8 शब्दावली

1. **द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक** – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. **आश्रय राग** – जनक राग, मेल राग(थाट का समान राग)
3. **शुद्ध, छायालग, संकीर्ण** – अपने मूलभूत स्थान पर स्थित राग(शुद्ध), वह राग जिस पर किसी अन्य राग की छाया हो(छायालग) तथा समिश्र राग प्रकार (संकीर्ण) कहलाते हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1 असत्य   2. सत्य   3. सत्य   4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1 भैरवी   2. अन्तर   3. चतुर्दण्डी प्रकाशिका   4. 20

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर, (1969), भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. वसन्त, (1997), *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1972), *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
4. गोबर्धन, शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2*, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भातखंडे, पं0 विष्णु नारायण, *संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभद्रा, *संगीत संचयन,* कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, राजस्थान।

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं. भातखण्डे द्वारा निर्मित दस थाटों की विस्तार से व्याख्या कीजिए तथा उनकी विशेषताएं एवं रचना नियम भी समझाइए।
2. पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों की रचना विधि का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 5 प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

5.4 मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

5.5 आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह इकाई बी.ए. संगीत के पाठ्यक्रम **(बी0ए0एम0एम0(एन)–222)** पंचम सेमेस्टर की पांचवी इकाई है। पिछली इकाई के अध्ययन के उपरांत, आप भारतीय संगीत की थाट पद्धति के विषय में बता सकेंगे।

इस इकाई में प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख भारतीय अवनद्य वाद्यों की चर्चा की गई है। साथ ही, इन अवनद्य वाद्यों के आविष्कार से जुड़े विभिन्न मतों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में कौन–कौन से अवनद्य वाद्य प्रयोग किए जाते थे। आप इन अवनद्य वाद्यों के आविष्कार से जुड़े विभिन्न मतों को भी जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

1. प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।
2. मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।
3. आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान सकेंगे।

5.3 प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

प्राचीन काल में संगीतरू यह काल मध्यकाल से पूर्व का काल है, जिसका समय 800 ई. से पहले का है। इस काल में वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल व पौराणिक काल का समावेश किया जा सकता है। वैदिक काल में हमें चार वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद) तथा रामायण, महाभारत जैसे प्रबंध काव्य एवं पुराण प्राप्त होते हैं। इनसे हमें इस काल के संगीत प्रसंगों के माध्यम से संगीत का ज्ञान प्राप्त होता है।

भारत में आर्यों के आगमन से वैदिक युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस युग में चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) स्थापित हुए। संगीत ब्राह्मण वर्ग के हाथ में था। स्त्रियां भी इस युग में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों में भाग लिया करती थीं। यज्ञ हेतु गायक एवं वादक नियुक्त रहते थे। इस युग में संगीत धर्म के साथ जुड़ गया तथा पवित्र माना जाने लगा। आर्यों के जीवन में संगीत ने पूरी तरह से प्रवेश किया। इस समय आर्यों ने देवताओं को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन संगीत को ही माना और संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप भी स्थापित हुआ। इस युग में संगीत एवं संगीत कलाकारों को बहुत सम्मान प्राप्त था, जिसका कारण वैदिक युग के कलाकारों का उज्जवल एवं उच्च कोटि का चरित्र था। संगीत की तपस्या बड़े संयम एवं नियम से की जाती थी। स्त्रियां वीणा वादन में प्रवीण थीं एवं संगीत के आयोजन में खुलकर भाग लेती थीं तथा समाज में इनको सम्मान प्राप्त था। मध्यकाल के उत्तरार्ध में संगीत जब धर्म एवं अध्यात्म से अलग होकर विलास के रूप में प्रयोग होने लगा तो इसमें नैतिक पतन आया एवं इसको हेय दृष्टि से देखा जाने लगा।

ऋग्वेद की गानोपयोगी ऋचाओं को संकलित करके ही सामवेद की रचना हुई। ऋक का स्वरयुक्त गान होता था, जो कि स्वर एवं शब्द के मेल का प्राचीनतम स्वरूप है। सामवेद से ही संगीत का प्रथम ज्ञान प्राप्त होता है तथा यह संगीत का प्रारम्भिक ग्रंथ है।

वैदिक युग में सामगान के चार प्रकार थे – ग्रामगेय, अरण्ये गेय, उहं एवं ऊह। ग्रामगेयरू यह गायन गृहस्थी, गोष्ठियों तथा सामान्य जन के लिए था। अरण्ये गानरू यह अरण्यवासी ऋषियों के लिए था। सामगान के दो भागरू पूर्वगान एवं उत्तरगान थे। ग्रामगेय गान को पूर्वगान तथा अरण्ये, उहं एवं ऊह गान को उत्तरगान कहते थे। ग्रामगेय गान में मार्गी संगीत की कल्पना प्रतिपादित हुई। सामगान में तीन स्तोभ थे– वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ तथा वाक्य स्तोभ । भरत ने इन्हीं स्तोभों से बहि गींतों को स्थापित किया। सामगान में वर्तमान की भांति सम, विषम, विभिन्न प्रकार के छंद एवं लय के विभिन्न प्रयोग होते थे। सामगान किसी भी यज्ञ हेतु अनिवार्य था।

सामगान हेतु स्वर सप्तक का प्रयोग होता था, जिन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट एवं अतिस्वर कहते थे। इनका क्रम अवरोह का था। वैदिक युग में नई–नई शैलियों के गीतों का उदय एवं विकास हुआ। सामवेद द्वारा स्वर सप्तक, लय के प्रयोग, छंद के प्रयोग का प्रथम बार ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों में विभिन्न प्रकार के लय वाद्यों का प्रसंग भी प्राप्त होता है। वैदिक संगीत के अतिरिक्त, लौकिक संगीत के रूप में गाथा गायन का भी प्रचार था। अथर्ववेद में काष्ठ दुंदुभि लय वाद्य का विवरण उपलब्ध होता है। सामगान में लय एवं छंद प्रदर्शन हेतु भूमि दुंदुभि का प्रयोग किया जाता था। यजुर्वेद कालीन महिलाएं लय शास्त्र में प्रवीण थीं तथा गायन एवं नृत्य में लयकारी का प्रदर्शन करती थीं। गायन, वादन एवं नृत्य के साथ मात्रा गिनकर हाथ से ताल देने की प्रथा थी, जो कि दक्षिण भारतीय संगीत में वर्तमान में भी प्रचलित है।'

रामायण एवं महाभारत काल प्राचीन काल में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका समय ईसा पूर्व 400 में 200 वर्ष तक का है। रामायण एवं महाभारत संगीत ग्रंथ नहीं हैं, परंतु इनमें उपलब्ध संगीत प्रसंगों से तत्कालीन संगीत की स्थिति की जानकारी मिलती है। रामायण एवं महाभारत के लगभग प्रत्येक अध्याय में गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख है। रामायण काल में संगीत का विशेष आदर था। राज परिवार, ब्राह्मण तथा ऋषि–मुनि भी संगीत की साधना किया करते थे। महर्षि वाल्मीकि ने लव–कुश द्वारा राम की सभा में रामायण का सस्वर गान कराया। राम के अश्वमेध यज्ञ आयोजन में रामायण का स्वर एवं ताल युक्त गान का उल्लेख उत्तरकांड में प्राप्त होता है। इसके लिए कुशल गायकों को आमंत्रित किया गया था। महर्षि वाल्मीकि स्वर संगीत के मर्मज्ञ थे और उन्होंने लव–कुश के माध्यम से द्रुत, मध्य एवं विलंबित लय का विवेचन किया। रामायण काल में लय वाद्यों का विशेष स्थान एवं महत्व था। भरत के अयोध्या लौटने पर पिता दशरथ की मृत्यु का पता न होते हुए भी अयोध्या में मृदंग तथा अन्य लय वाद्यों को मौन देखकर उन्हें अनिष्ट का आभास हो गया था। रामचन्द्र द्वारा शिव का धनुष तोड़े जाने के समय आकाश में देवताओं द्वारा दुंदुभी बजाई गई और अप्सराओं ने नृत्य व गीत किया। रामचन्द्र एवं सीता के जयमाला के समय भी संगीत का आयोजन किया गया था। ये सभी प्रसंग रामायण काल में मिलते हैं। रावण भी संगीत का प्रकांड विद्वान था। रामायण काल में हाथ से लय ताल देने की प्रथा रही, जिसे रामायण में गान्धर्व गान के प्रसंग में पाणिवादिका शब्द से ज्ञात होती है।

महाभारत काल में कृष्ण, संगीत एवं नृत्य के महान आचार्य थे और उनके द्वारा रासलीला नृत्य की उत्पत्ति की गई। वाद्यवंशी (बांसुरी) एवं कृष्ण एक दूसरे के पूरक बन गए।

नृत्य का महाभारत में आदि पर्व, द्रोण पर्व तथा अरण्य पर्व में उल्लेख प्राप्त है। इस काल में रस, भाव एवं लय प्रयोगों के संदर्भ प्राप्त होते हैं, जिनका विवेचन भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। समाज में पुरुषों के समान नारियां तथा अंतःपुर की स्त्रियां भी संगीत तथा नृत्य में निपुण थीं। कलाकारों का समाज में संगीत एवं नृत्य के कलाकारों को सम्मान प्राप्त था। महाभारत काल के धनुर्धर अर्जुन पखावज वादन तथा नृत्य कला में निपुण थे। यह उनके अज्ञातवास के समय बृहन्नला का रूप धारण कर संगीत–नृत्य की शिक्षा, विराट राजा की पुत्री उत्तरा को देने के प्रसंग से प्रमाणित होता है। महाभारत काल में कृष्ण एवं अर्जुन ने संगीत की स्थापना में विशेष योगदान दिया। अर्जुन नृत्य, पखावज वादन तथा वीणा वादन तीनों में ही निपुण थे।' रामायण तथा महाभारत के पश्चात सभ्यता एवं संस्कृति के विकास हेतु पुराण लिखे गए। पुराणों के रचयिता के रूप में महाभारत के रचयिता वेद व्यास ही जाने जाते हैं। प्राचीन समय में अठारह पुराणों का उल्लेख मिलता हैं। अठारह पुराण के नाम इस प्रकार हैं–बहम, पदम, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्निय, भविष्य, बहमवैवर्त, लिंग, बाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मतस्य, गरूण एवं बह्मांड।

मार्कण्डेय पुराण प्राचीन पुराण ग्रन्थ है। यह 237 अध्याय में विभक्त है परन्तु प्रत्येक अध्याय में संगीत नृत्य के प्रसंग प्राप्त नहीं होते हैं। प्रथम अध्याय में नारद ने अप्सराओं को सम्बोधित कर नृत्य एवं नर्तक की व्याख्या प्रस्तुत की। मार्कण्डेय पुराण के तेईसवें अध्याय में संगीत की विवेचना की गई है। इस अध्याय में संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के माध्यम से ताल क्रियाओं तथा वाद्य वर्गीकरण का परिचय दिया गया है। ताल, लय तथा यति आदि का उल्लेख भी इस पुराण में प्राप्त होता है। मार्कण्डेय पुराण के अतिरिक्त वायु पुराण के 86 व 87 वें अध्याय में संगीत की विवेचना की गई है जिसे गान्धर्व शास्त्र कहा गया। सात स्वर, तीन ग्राम, मूर्च्छना और स्थानरू सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीसमूर्च्छना व उन्नचास स्थानों का उल्लेख भी वायु पुराण में प्राप्त होता है।'

पुराणों के पश्चात हमें तीन उपनिषद छांदोग्योपनिषद, बृहदारण्यकोपनिषद तथा तैतिरीयोपनिषद प्राप्त होते हैं। इन तीनों में छांदोग्य उपनिषद सबसे प्राचीन है जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें ही गीत के साथ सामूहिक नृत्य का तथा ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत मात्राओं का विवरण मिलता है। गायन में तथा मंत्रों के पाठ हेतु मात्राओं के प्रयोग के निश्चित नियम थे तथा नियमों के विपरीत मंत्रों का पाठ अथवा गायन निषिद्ध था। बृहदारण्यक में गायत्री मंत्र हेतु त्रिष्टुप एवं अनुष्टुप छंद का प्रयोग निश्चित किया गया है। तैतिरीय उपनिषद में संगीत में प्रयुक्त होने वाले वर्ण, स्वर, मात्रा तथा बल शब्द के उच्चारण की विवेचना प्रस्तुत की गई है। स्वर के प्रकार–अनुदात्त, स्वरित एवं उदात्त, मात्रा –लघु,दीर्घ एवं प्लुत की विवेचना तैत्तिरीय उपनिषद में प्राप्त होती है।

उपनिषदों के पश्चात शिक्षाशास्त्र ग्रन्थों में संगीत की प्रायोगिक शिक्षा के मन्त्र प्राप्त होते हैं। शिक्षाशास्त्र ग्रन्थ को प्रतिशारण्य ग्रन्थ भी कहा गया है। इसमें विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के प्रयोग की शिक्षा के विषय में चर्चा की गई है जिसके अनुसार प्रारम्भ में विलम्बित लय का प्रयोग, पुनरावृत्ति हेतु द्रुत लय तथा प्रदर्शन हेतु मध्यलय के प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। कण्ठ के अभ्यास हेतु मन्द्र सप्तक का प्रयोग बताया गया है।

विभिन्न जातक कथाओं के माध्यम से बौद्ध काल में संगीत की स्थिति स्पष्ट होती है। भेरीवादक जातक कथा के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म एक भेरी बजाने वाले के कुल में हुआ था तथा इसमें भेरी का उल्लेख है।शंख जातक में शंख का उल्लेख है। गुप्तिल जातक में गुप्तिल ने अपने शिष्य मुसिल को एक श्रेष्ठ वादक का स्थान दिया। काकवती जातक में वीणा एवंगाथा गान का प्रसंग है। शोणक जातक में राजा अमरेन्द्र एवं बालक पचंचूड के सन्दर्भ में गायन का प्रसंग है तथा उसी में बताया गया है कि भेरी की ध्वनि के द्वारा लोगों को संगीत आयोजन हेतु सूचना दी जाती थी। विदुर पण्डित जातक में हाथ से ताली देकर संगीत प्रदर्शन एवं लय वाद्य कुतस्थुण,पणव, डिडिम्ब, मृदंग, कांस्य एवं करताल का उल्लेख है। उसी में स्त्रियों के सामगान के साथ पिच्छौरा वीणा वादन का भी उल्लेख है।

कुतस्थुण का वर्तमान स्वरूप दक्षिण भारतीय संगीतका घटम वाद्य है परन्तु कुतस्थुण में घड़े के मुख कोचर्म द्वारा आच्छादित किया जाता था। विश्वन्तर जातक में वाद्यों का वर्गीकरण प्राप्त होता है जिसमें वाद्यों को पांच श्रेणी–आतत, वितत, आततवितत, घन तथा सुषिर वर्ग में रखा गया है। आतत श्रेणी में वर्तमान के अवनद्य वाद्य आते हैं जिनमें मुख परचमड़ा मढा होता है, जैसे तबला। वितत जिनके दोनों मुख परचमड़ा मढा होता है जैसे ढोल, डमरू, हुडक्का, मृदंग आदि। आतत वितत श्रेणी में वीणा जैसे वाद्य थे। घन तथा सुषिर का वर्गीकरण वर्तमान की भांति ही था। शवयात्रा तथा अन्त्येष्टि के समय भेरी वादन किया जाता था। गौतमबुद्ध के महानिर्वाण के बाद उनकी अन्त्येष्टि वाद्यों की ध्वनि के साथ सम्पन्न की गई थी।

बौद्ध काल में वाराणसी में एक विश्वविद्यालय था जिसके साथ एक संगीत विद्यालय संलग्न था। इसमें लगभग 500 विद्यार्थी थे जोकि संगीत के गुणी शिक्षकों से संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे। उस समय के तीन विश्वविद्यालय नालन्दा, विक्रमशीला तथा औदन्तपुरी में गान्धर्व विद्या विभाग था जिसमें संगीत की विधिवत शिक्षा दी जाती थी।'

मौर्य काल में भी संगीत का विकास हुआ परन्तु इस काल में संगीत मनोरंजन हेतु अधिक प्रयोग होने लगा था। संगीत नागरिक जीवन का अंग बन गया। विवाह हेतु भी वर तथा वधु के लिए संगीत में प्रवीण होना एक आवश्यक गुण माना जाता था। गणिकाओं में संगीत उनकी जीविका निर्वाह का साधन बन गया था। संगीत कला का आदान–प्रदान गोष्ठियों के माध्यम से होने लगा। चन्द्रगुप्त मौर्य की पत्नी जो कि यूनान के सैल्युकस की पुत्री थी, यूनानी संगीत की उत्तम कलाकार थी। इस प्रकार भारत में यूनानी संगीत आया।

अशोक ने संगीत को उच्च स्तर पर पहुंचाने के लिए अथक परिश्रम किया जिसमें उन्होंने श्रृंगारिक गीतों का बहिष्कार किया। अशोक की पत्नी की परिचारिका चारुमित्रा वीणावादिका थी। अशोक के समय संगीत ने पुनः अपने आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त किया जिसको विदेशों में श्रद्धा से अपनाया गया। अशोक के बाद कनिष्क स्वयं संगीतज्ञ थे। इन्होंने संगीत को उसके गौरवशाली स्तर पर पहुंचाने में विशेष योगदान दिया। कनिष्क के दरबार में भारत के समस्त प्रान्तों के अतिरिक्त अफगानिस्तान तथा चीन के कलाकार भी समय–समय पर उपस्थित रहा करते थे, जिनका कनिष्क बहुत आदर किया करता था तथा यथोचित पुरस्कृत भी करता था। इस समय भारतीय संगीत का प्रचार पूरे एशिया में हुआ। कनिष्क काल के उपरान्त भरत ने नाट्यशास्त्र की रचना की।'

गुप्त काल के सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं एक अच्छे संगीतज्ञ थे। उस समय की सोने की मुद्रा पर समुद्रगुप्त का वीणा वादन करते हुए चित्र उक्त तथ्य को सिद्ध करता है। इस काल में भारतीय संस्कृति के साथ विदेशी सभ्यता एवंसंस्कृति का मिलन हुआ जिससे संगीत में नवीन दिशाओं का सूत्रपात हुआ।

महाराजा विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) ने शिक्षा, शिल्प, संगीत के लिए नाट्यशास्त्र तथा संगीतशालाओं का निर्माण करवाया था। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों से गुप्तकालीन संगीत का परिचय प्राप्त होता है। कालिदास के समय मार्गी संगीत का लगभग लोप हो चुका था तथा देशी संगीत ही समाज में प्रचलित था। कालिदास के 'कुमारसम्भव' एवं 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' में संगीत के शाब्दिक शब्दों का प्रयोग है। 'कुमारसम्भव' में मंगलपदों के लिए विलम्बित शब्दों का प्रयोग उल्लेखित है। 'मेघदूत' में कालिदास ने गान्धारग्राम की मूर्च्छनाओं का वर्णन किया है। 'मृच्छकटिक' नाटक में मृदंग हेतु पणव शब्द का प्रयोग किया गया है। भरत के पुत्र दत्तिाल द्वारा लिखा गया ग्रन्थ दत्तिलम इस काल की महत्वपूर्ण देन है।

प्राचीन काल में हमें चारवेद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि से इस काल के संगीत की स्थिति का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त संगीत की विवेचना भरत के नाट्यशास्त्र, नारदकृत नारदीय शिक्षा, नारदकृत संगीत मकरंद, शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर, रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि, दामोदरकृत संगीत दर्पण, सोमनाथकृत रागविबोध, अहोबलकृत संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों से प्राप्त होती है जो कि संगीत के विकास हेतु बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

<u>प्राचीन काल के अवनद्य वाद्य–</u>

डमरूरू डमरू–डमरू भारत का सर्वप्रथम अवनद्य वाद्य है। डमरू शंकर भगवान के दाए हाथ में रहता है जोकि अखण्ड महाकाल को नियंत्रित एवं संयमित करने का घोतकहै।'

दुदुम्भी–

वैदिक काल में दुदुम्भी का अवनद्य वाद्य के रूप में विशेष स्थान था। दो प्रकार की दुदुम्भी प्रचलन में थी

1. भूमि दुदुम्भी जो कि पृथ्वी में गढ़ा खोदकर उसके मुख पर चमड़ा आच्छादित किया जाता था तथा चमड़े को चमड़े की डोरी से कसा जाता था।
2. काष्ठ–दुदुम्भी लकड़ी के खोल के ऊपर चमड़ा मढ़ दिया जाता था। मन्त्रों द्वारा दुदुम्भी का आवाहन किया जाता था।

मन्त्रों में शत्रु के नाश हेतु दुदुम्भी का प्रयोग होता था। काष्ठ–दुदुम्भी को अन्य नामरू काष्ठ दुदुम्भी को वनस्पति वाद्य भी कहा गया है। नगाड़ा, नक्कारा, घौंसा तथा दमामा, दुदुम्भी वाद्य के ही रूप हैं। इनके विभिन्न आकार के कारण इनके नाम भिन्न हो गए। वर्तमान का नगाड़ा दुदुम्भी ही है। हिन्दी शब्द सागर में भी दुदुम्भी का अर्थ नगाड़ा तथा घौंसा दिया गया है। दुदुम्भी मंगल उत्सवों में तथा देव मंदिरों में बजाई जाती थी। दुदुम्भी एक नग का वाद्य था। नगाड़ा में बड़े आकार के साथ एक छोटा आकार भी जुड़ गया जिसमें छोटे की ध्वनि उंचे स्वर की तथा बड़े आकार की ध्वनि गंभीर एवं नीचे स्वर की होती है। इसका

प्रयोग शहनाई वाद्य की संगति एवं हरियाणा तथा राजस्थान के लोक संगीत में होता है। इसका वादन हाथ एवं लकड़ी दोनों से ही आवश्यकतानुसार किया जाता है।

मृदंग–

यह एक अत्यंत प्राचीन अवनद्य वाद्य है जिसके आविष्कारक भगवान शंकर को बताया गया है तथा भगवान गणेश ने सर्वप्रथम इसका वादन किया।

त्रिपुरासुर के वध के पश्चात् उसके रक्त से जो कीचड़ बना उससे ब्रह्मा ने मृदंग का निर्माण किया। वैदिक काल का मृदंग मिट्टी का बना होता था परन्तु महाभारत काल में यह लकड़ी का बनने लगा। लकड़ी से बने मृदंग की ध्वनि मिट्टी से बने मृदंग की ध्वनि से अधिक मधुर होती थी। कई ग्रन्थकारों ने लकड़ी के बने मृदंग को मधुर मृदंग भी कहा है। रक्त चंदन लकड़ी से बना मृदंग को सबसे अच्छा माना जाता था। मृदंग दो मुखी वाद्य है जिसका दाहिना मुख आठ से दस अंगुली के व्यास का तथा बायां मुख इससे थोड़ा बड़ा होता है। इसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ के बराबर होती थी। दोनों मुख पर बकरे का चमड़ा लगाया जाता था। प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग, मुरज तथा मर्दल शब्दों का प्रयोग मिलता है। भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि मांगलिक होने के कारण इसको मृदंग तथा मिट्टी से बने होने के कारण इसे मुरज कहा गया। मृदंग एवं मुरज एक दूसरे के पर्याय है शारंगदेव का मत भी यही था। शारंगदेव ने मृदल को भी मृदंग का पर्याय माना है।

पुष्कर–

भरत ने मृदंग को पुष्कर त्रय भी कहा है। भरत के समय में मृदंग के तीन भाग थे– आंकिक, उर्ध्वक तथा आलिग्य जिनको त्रय पुष्कर भी कहा जाता था। आलिग्य एवं उर्ध्वर्क को खड़ा कर तथा आंकिक को लिटाकर बजाते थे। पुष्कर वाद्य की रचना के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि स्वाति मुनि जब स्नान कर रहे थे तब उनको कमल पत्र पर पड़ने वाली जल धारा की ध्वनि ने आकर्षित किया तथा इसे सुनकर इन्होंने पुष्कर वाद्य का निर्माण किया। शारंगदेव के समय तक त्रय पुष्कर वाद्य का प्रचलन कम हो गया था। भरत ने आंकिक को हरीतकी के समान, उर्ध्वक को यवा अथवा जौ के समान तथा आलिग्य को गोपुच्छा की आकृति के समान बताया है। उर्ध्वक तथा आलिग्य का वादन एक मुख से होता था तथा आंकिक का वादन दोनों मुखों से होता था। मार्जन अर्थात स्वर स्थापना का वर्णन करते हुए भरत ने उर्ध्वकतथाआलिग्य का नाम लिया तथा आंकिक हेतु नाम लिया बाम तथा दक्षिण भाग का जो आंकिक के दो मुखों को स्पष्ट करता है नाम लिया। आंकिक लेटा हुआ वाद्य होता था जो अंक (गोद) में रखकर दोनों मुखों से बजाया जाता था। इसी स्वरूप का बाद में मृदंग अथवा पखावज तथा दक्षिण का मृदंगम प्रचलन में आया। भरतकालीन मृदंग के तीन भाग अथवा त्रय पुष्कर थे परन्तु इनमें आंकिक भाग महत्वपूर्ण था। मृदंग के आकार एवं रूप का वर्णन करते हुए भरत ने पहले आंकिक का वर्णन किया है।

पुष्कर पर स्वर स्थापना का निश्चित नियम था जो मध्यग्राम, षडजग्राम तथा गान्धारग्राम के गान के लिए था। इनको क्रमशः मायूरी मार्जना, अर्धमायुरी मार्जना तथा कारमारवी मर्जना कहते थे। मायूरी मर्जना में बाम मुख को गान्धार, दक्षिण मुख को षड्ज तथा उर्ध्वक को पंचम स्वर में मिलाया जाता था। अर्धमायुरी मार्जना में बाम मुख को षड्ज, दक्षिण मुख को ऋषभ तथा उर्ध्वक को पंचम स्वर में मिलाया जाता था।

कार्मारवी मार्जना में बाममुख को ऋषभ, दक्षिण मुख को षड्ज तथा उर्ध्वक को पंचम में मिलाया जाता था।पुष्कर का प्रचलन धीरे—धीरे कम हो गया तथा मध्यकाल आते—आते मृदंग लोकप्रिय हो गया।

भेरी—

हिन्दी शब्दसागर में भेरी को ढोल, नगाड़ा तथा ढक्का बताया है। भेरी को मृदंग जाति का माना जा सकता है क्योंकि यह मृदंग की भाँति दो मुख वाला वाद्य है। भेरी को ढोल के अधिक पास माना जा सकता है, परन्तु नगाड़े का इससे कोई साम्य नहीं है। भेरी के दोनों मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है तथा इसको दाहिनी ओर लकड़ी से तथा बांयी ओर हाथ से बजाते हैं, जोकि ढोल की वादन विधि भी है। भेरी का उल्लेख सभी प्राचीन ग्रन्थों में विशेषकर रामायण तथामहाभारत में मिलता है। भेरी का सुषिर वाद्य का स्वरूप भी प्राचीन काल से प्राप्त होता है। यह छः—सात फुट लम्बी धातु की बनी होती है जिसको फूंककर बजाने का प्रचलन मध्यकाल में युद्ध तथा विवाहोत्सव के समय था। युद्ध के लिए दुदुम्भी वाद्य का प्रयोग किया जाता था किन्तु बाद में इसका स्थान अवनद्य वाद्य भेरी ने ले लिया। दुश्मन में भय उत्पन्न करने हेतु इसका प्रयोग किया जाता था। भेरी के साथ शंख का वादन भी किया जाता था। भेरी का वर्तमान रूप ढोलक कहा जा सकता है।

पटह—

पटह वर्तमान की ढोलक का स्वरूप है। संगीत पारिजात में पटह का अर्थ भी ढोलक ही दिया गया। मध्यकाल की ढोलक को प्राचीन काल में पटह कहा जाता था। पटह, भेरी तथामृदंग जाति का वाद्य था जिसे लकड़ी एवं हाथ के आघात से आवश्यकतानुसार बजाया जाता था। मृदंग के बाद पटह ही लोक प्रिय वाद्य था। पटह वाद्य का प्रयोग मुख्यतः देशी संगीत के लिए किया जाता था जबकि मृदंग मार्गी संगीत तथा मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत के लिए प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल तथा वर्तमान काल में ढोलक का प्रयोग लोक संगीत में ही हुआ। इसका उल्लेख रामायण, महाभारत, नान्यादेव के भरत भाष्य, संगीतरत्नाकर आदि ग्रन्थों में मिलता है।

पणव—

उत्तराखण्ड के लोकसंगीत में प्रयोग होने वाला हुडका प्राचीन काल का पणव है। ये दो मुखी वाद्य है जिसके दोनों मुख कोमल चमड़े से मढ़े होते हैं जिनको सुतलियों के माध्यम से कसा जाता है। यह डमरू आकार का होता है, बीच में सुतली को ढीला रखा जाता है जिससे बीच में बाएं हाथ से दबाकर नीची तथा ऊंची ध्वनि प्राप्त की जाती है। दाहिने मुख पर हाथ से प्रहार कर शब्द अथवा बोल निकाले जाते हैं तथा इसको कंधे पर लटकाकर बजाया जाता है। प्राचीन काल के पणव को मध्यकाल में आवज, स्कन्धावज तथा हुडुक व वर्तमान में हुडका वाद्य के नाम से जाना जाता है।

दर्दर अथवा दर्दुर—

यह मिट्टी का घड़ा है जिसका मुख लगभग सात से नौ अंगुल व्यास का होता है तथा विशेष बात यह कि इस पर मढ़ी खाल का व्यास मुंह से दो—तीन अंगुल अधिक होता है जिसको नीचे डोरी से बांध देते हैं। यह दोनों हाथों के आघात से बजाया जाता है तथा इस पर मृदंग पर प्रयोग होने वाले बोल ही बजाए जाते हैं। इस वाद्य को मृदंग वाद्य के साथ बजाने की प्रथा थी। भरत ने दर्दर वाद्य की चर्चा नाट्यशास्त्र में की तथा

इसी दर्दर वाद्य को शारंगदेव ने घट कहा। मध्यकालीन घट में चमड़ा मुख के व्यास के बराबर ही रखा जाने लगा। बिना मुख पर चमड़े वाला घट भी प्रयोग में आया जो कि वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत में घटम के नाम से प्रयोग किया जाता है।'

चक्र वाद्य अथवा करचक्र–

यह गोलाकार आकार का लकड़ी का बना होता है। इसके एक मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है जिसका व्यास लगभग दस अंगुलि का होता है। इसको कंधे के सहारे पर रखकर, बाएं हाथ से चमड़ा दबाया जाता है तथा दाहिने हाथ से चमड़े पर आघात किया जाता है। संगीतसार में चक्रवाद्य को खंजरी कहा गया है। मध्यकाल की खंजरी में तीन अथवा चार छोटी लकड़ी के घेरे को काटकर थोड़ी थोड़ी दूरी पर लगाई जाती है जिससे वादन के समय में ये झांझे झंकृत होकर मधुर ध्वनि उत्पन्न करती हैं। बिना झांझ वाली चक्रवाद्य का आकार बड़ा होने पर इसको ढफ कहा जाता है। अतः ढफ तथा खंजरी चक्र वाद्य के ही प्रकार हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामवेद में प्रयोग होने वाले सप्तस्वर के नाम लिखिए।
2. सामगान हेतु प्रारम्भ में कौन से अवनद्य वाद्य का प्रयोग होता था?
3. महाभारत के अर्जुन कौन से वाद्य बजाते थे?
4. महाभारत के रचयिता कौन थे?
5. पुराणों की संख्या कितनी है?
6. सात स्वर, तीनग्राम, इक्कीसमूर्च्छना तथा उनचासतान का उल्लेख किस पुराण में किया गया है?
7. सामगान में स्त्रियों द्वारा कौनसी वीणा बजाई जाती थी?
8. ढोलक के समान प्राचीन काल में कौनसा वाद्य था?
9. भेरी के समान वर्तमान में कौनसा वाद्य है?
10. प्राचीन काल का पणव वर्तमान में कौनसा वाद्य है?

5.4 मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

मध्य काल में संगीत में 800 ई. से 1800 ई. तक का काल मध्य काल के रूप में जाना जाता है। संगीत की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण काल रहा क्योंकि इस काल में संगीत में कई उतार–चढ़ाव हुए। इस काल में आंशिक रूप से राजपूत काल तथा मुख्य रूप से मुगल काल समाहित है। राजपूत काल में भारत छोटे–छोटे भागों में विभक्त हो गया था तथा छोटे–छोटे राज्य बन गए थे। छोटे–छोटे राज्य आपस में ही युद्ध में व्यस्त रहते थे। प्राचीन काल की संगीत परम्परा इस काल में नहीं रही। संगीत राज दरबारों एवं विलासिता का अंग बन गया तथा शासक की इच्छा के अनुरूप ही संगीत प्रयोग होने लगा तथा संगीत ने इसी वातावरण में संभवतः विकास किया। यद्यपि इस युग के उपलब्ध राग–रागिनी के चित्र यह दर्शाते हैं कि राजपूत वर्ग संगीत का प्रेमी था। महाकवि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना इसी काल में की तथा नारदीय शिक्षा ग्रन्थ का काल भी यही माना जाता है। इसी युग में मोहम्मद गजनवी तथा शहाबुद्दीन गौरी ईरानी बादशाहों ने भारत पर आक्रमण किए। ईरान के बादशाह बहेरामन ने भारत के लगभग 1200

संगीतज्ञों को अपने यहां नौकरी पर रख लिया था। इस प्रकार धीरे–धीरे मुसलमानों का भारत में प्रवेश हुआ।

भारत पर मुसलमान राजाओं की विजय से भारतीय संगीत पर प्रभाव पड़ा। इस काल में हिन्दू कलाओं के पतन का आरम्भ हुआ। भारत की पवित्र संगीत कला मुस्लिम धारा में विलय हो गई तथा उसका वैदिक–सौन्दर्य नष्ट हो गया।

(1290 से 1320 ई.) इस काल को खिलजी युग से जाना जाता है। अलाउद्दीन खिलजी संगीत का प्रेमी था एवं इनके दरबार में कवि एवंसंगीतज्ञ अमीर खुसरो थे। भारतीय संगीत के सन्दर्भ में अमीर खुसरो विशेष चर्चा में रहे। अमीर खुसरो को कई राग एवं तालों का आविष्कारक बताया जाता है। सितार एवंतबला वाद्य के आविष्कारक के रूप में भी अमीर खुसरो का नाम लिया जाता है जो कि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सिद्ध नहीं हो सका है। खिलजी युग में शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर ग्रन्थ की रचना कर संगीत शास्त्र की प्रस्तुति की तथा भरत के कार्य को मध्यकाल में आगे बढ़ाया। शारंगदेव के समय प्रबन्ध गायन प्रचलित था।

खिलजी युग के पश्चात तुगलक युग में संगीत का प्रचलन समाज में हुआ परन्तु गंभीर शास्त्रीय संगीत के बजाय गजल, कव्वाली, ठुमरी तथा दादरा अधिक प्रचलित हुए।

बाबर के शासनकाल से मुगल काल का आरम्भ हुआ। बाबर स्वयं संगीत प्रेमी था एवं संगीतज्ञों का सम्मान करता था परन्तु संगीत को वह केवल मनोरंजन का साधन ही समझता था। प्राचीन काल में संगीत को जो नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर प्राप्त था वह मध्यकाल में धुमिल हो गया। बाबर के पश्चात जब हुमायूँ गद्दी पर बैठा तो उस समय सूफी लोग समाज में मानव उत्थान की बातों को संगीत के प्रचारित करते थे। हिन्दू संतों ने भी यही कार्य किया जिससे संगीत की स्थिति स्थिर होने लगी। इसी काल में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की में 1500 ई. के लगभग ख्याल पद्धति को प्रचलित किया तथा नवीन रागों की रचना की।

अकबर का काल संगीत के लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसी काल में संगीत का पुनः उद्धार हुआ। इस काल में ही स्वामी हरिदास, तानसेन, बैज, रामदास, ब्रजचन्द, श्रीचन्द आदि संगीतज्ञ तथा संत कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, चौतन्य आदि ने संगीत के प्रचार–प्रसार में अमूल्य योगदान दिया। अकबर के दरबार में डागर गांव के निवासी ब्रजचन्द्र, खंडहार के निवासी राज समोखन सिंह, नौहार के श्रीचन्द राजपूत तथा तानसेन थे। इन महान संगीतज्ञों ने क्रमशः ध्रुपद की डागर वाणी, खंडहार वाणी, नौहार वाणी तथा तानसेन ने गोहरहार वाणी प्रचलित की। ध्रुपद की यह वाणी की यह परंपरा वर्तमान तक स्थापित है। तानसेन गौड़ ब्राह्मण थे अतः उनकी शैली का नाम गोडीय अथवा गोहरहारी पड़ा। अकबर के समय स्वामी हरिदास प्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा संत हुए, तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियां की सारंग, मियां की मल्हार, साजागिरी आदि रागों का भी निर्माण किया। इस समय ध्रुपद गायन ही अधिक प्रचलित था। कबीर, सूर, नानक, तुलसी, मीरा ने अपने पदों को संगीतबद्ध कर समाज में फैली कुरीतियों को भजन शैली के माध्यम से जनचेतना जागृत की। संगीत के उत्थान में इन संत संगीतज्ञों का विशेष योगदान है। आज भी इन भक्त कवियों के पद बड़े आदर के साथ गाए जाते हैं। ये सभी संत संगीत के मर्मज्ञ थे।

अकबर का पुत्र जहांगीर तथा जहांगीर का पुत्र शाहजहां संगीत के प्रेमी थे। इन्होंने संगीत एवंसंगीतज्ञों को पूर्ण आश्रय प्रदान किया जिससे संगीत के मौलिक सिद्धान्तों की रक्षा हुई। संगीत दरबारों की शोभा था तथा शासक की प्रशंसा में ही संगीत की रचनाएं हुईं। संगीत, गणिकाओं के जीवन यापन का साधन भी बन चुका था। जहांगीर के दरबार में छत्तर खां, विलास खां, खुर्रम दाद, परवेज दाद आदि कलाकार थे। पंदामोदर ने संगीतदर्पण की रचना जहांगीरकाल में ही की थी।

इस काल में कत्थक नृत्य भी प्रचार में था। औरंगजेब को संगीतकला का दुश्मन समझा जाता है जिसका कारण उसके समक्ष संगीत का वह स्वरूप ही आया जो विलासितपूर्ण था। इस प्रकार के संगीत को उसने चरित्र के उत्थान में बाधा समझा तथा वह संगीतविरोधी हो गया। यद्यपि वह संगीत का आदर करता था। ऐतिहासिक तथ्यों में किरपा पखावजी को औरंगजेब ने 'मृदंगराय' की उपाधि से सम्मानित किया। बेगम एवं शहजादियों के मनोरंजन हेतु महल में गायन तथा नृत्य के कार्यक्रम हुआ करते थे।

मुहम्मदशाह रंगीले मुगलवंश के अंतिम बादशाह थे जो कि संगीत में निपुण थे। इनके दरबार में सदारंग एवं अदारंग संगीतज्ञ तथा वागेयकार थे। सदारंग तथा अदारंग ने सैकड़ों ख्यालों की रचना की जिसमें उनका नाम भी आता है। मुहम्मदशाह रंगीले का नाम भी ख्याल की रचनाओं में आता है जिनका संकलन पं. भातखंडे ने अपन क्रमिक पुस्तक मालिका में किया है।ठुमरी एव ंटप्पे का प्रचलन भी रंगीले के समय में ही हुआ। इस समय तक ध्रुपद गायन, ख्याल शैली, ठुमरी—दादरा, टप्पा ,तराना आदि शैलियां प्रचलन में आगई थी।

मध्यकाल के अवनद्य वाद्य— प्राचीन काल के सभी अवनद्य वाद्य का प्रचलन मध्यकाल में भी रहा परन्तु उनके नामकरण में परिवर्तन आया जिसकी चर्चा वैदिक काल में अवनद्य वाद्य के अंतर्गत की जा चुकी है। मध्यकाल में ख्याल गायन शैली का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसकी लय—ताल की संगति हेतु मृदंग वाद्य को उपयुक्त नहीं समझा गया। इसके लिए तबला वाद्य का निर्माण हुआ जिसकी ध्वनि ख्याल गायन शैली के लिए उपयुक्त थी। अतः मध्यकाल में अवनद्य वाद्य में तबले के द्वारा श्री वृद्धि हुई। तबला वाद्य सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य बन गया तथा इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत यहांतक कि लोक संगीत में भी होने लगा। निम्न सूची से आप प्राचीन काल के अवनद्य वाद्य तथा उनके मध्य काल में नाम से परिचित हो गए होंगे।

प्राचीनकाल	मध्यकाल
भेरी	ढोल
दर्दर/दर्दुर	घट, घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)
चक्रवाद्य	खंजरी (झांझ वाली), ढ़पली (बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग (बडे आकार की ढ़पली)
काष्ठदुदुम्भी	नगाडा
पणव	हुडुक अथवा हुड़का
पटह	ढ़ोलक
मृदंग	मृदंगम (दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज (उत्तर भारतीय संगीत)

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. महाकवि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना किस काल में की?
2. शारंगदेव के समय कौनसा गायन प्रचलित था?
3. सदारंग एवं अदारंग किस राजा के दरबार में संगीतज्ञ थे?
4. प्राचीन काल का दर्दर/दर्दुर वाद्य मध्यकाल में किस नाम से जाना जाता था?

5.5 आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य

आधुनिक काल 1800 ई0 से वर्तमान तक का माना जाता है। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में अंग्रेजों का शासनकाल था। अंग्रेजी सभ्यता के परिणामस्वरूप संगीत का विकसित रूप कुंठित होता चला गया। संगीतज्ञों को अपने प्रति अंग्रेजों के उपेक्षित एवं उदासीन व्यवहार के कारण अपनी आजीविका पार्जन हेतु संगीत कला को व्यावसायिक रूप प्रदान करना पड़ा। जिसका परिणाम यह हुआ कि वैदिक काल की उत्कृष्ट संगीत कला समाज के निम्न वर्ग में पहुंचगयी जहाँ उसका एकमात्र उद्देश्य क्षणिक सुख रह गया। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह संगीत से भी घृणा करने लगा। संगीत आमोद–प्रमोद का साधन बन गया, यहाँ तक कि सभ्य समाज में संगीत का नाम लेना अच्छा नहीं माना जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में एक बार फिर वाजिद अली शाह के दरबार में संगीत का सम्मान हुआ।

लखनऊ के गुलाम रज़ा साहब ने रजाखानी तथा मसीत खां में मसीतखानी गत का आविष्कार करके सितार पर उसके वादन का प्रचार किया।

श्रोताओं की समयाभाव व उनकी रुचि को समझते हुए शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने भी परम्परागत शैली से थोड़ा हटकर अपने संगीत में कुछ परिवर्तन किए हैं। आधुनिक काल में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ध्रुपद गायकी का प्रचार कम हो गया है तथा ख्याल शैली अधिक प्रचलित हो गयी है। साथ ही ठुमरी, गजल आदि गायकी भी लोकप्रिय होने लगी। गायन, वादन तथा नृत्य की संगति हेतु तबला एक लोकप्रिय, सक्षम तथा बहुप्रचलित ताल वाद्य के रूप में सामने आया।

संगीत के इस काल में दो महापुरुष (पं. विष्णुनारायण भातखण्डे व पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर) इस क्षेत्र में आए, जिन्होंने संगीत के उद्धार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह–जगह घूमकर संगीत का प्रचार–प्रसार किया एवं अनेक संगीत विद्यालय की स्थापना की। आप दोनों ने संगीत से सम्बन्धित कई पुस्तकें भी लिखीं। साथ ही संगीत की रचनाओं के संकलन के लिए स्वरलिपि व താललिपि पद्धति का निर्माण किया।

स्वाधीन भारत के उन्मुक्त पर्यावरण में भारत सरकार ने संगीत कला के विकास में महत्वपूर्ण कार्य जैसे अकादमी की स्थापना, आकाशवाणी व दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्र स्थापित करना, संगीतज्ञों को सम्मान एवंसुविधाएं प्रदान करना, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संगीत को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना आदि, जिससे संगीत का प्रचार–प्रसार तीव्र गति से होने लगा।

आधुनिक काल के अवनद्य वाद्य—

आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले कई अवनद्य वाद्य हैं जिनका प्रचलन प्राचीन काल व मध्य काल में भी रहा परन्तु उनके नामकरण में परिवर्तन आया। इनकी चर्चा वैदिक काल में अवनद्य वाद्य के अंतर्गत की जा चुकी है। इन वाद्यों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत यहांतक कि लोक संगीत में भी होता है। मध्यकाल में ख्याल गायन शैली का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसकी लय—ताल की संगति हेतु मृदंग वाद्य को उपयुक्त नहीं समझा गया। इसके लिए तबला वाद्य का निर्माण हुआ जिसकी ध्वनि ख्याल गायन शैली के लिए उपयुक्त थी। अतः मध्यकाल में अवनद्य वाद्य में तबले के द्वारा श्री वृद्धि हुई। तबला वाद्य सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य बन गया तथा इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत यहांतक कि लोक संगीत में भी होने लगा। निम्न सूची से आप प्राचीन व मध्य काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अवनद्य वाद्य तथा उनके आधुनिक काल के नाम से परिचित होंगे।

प्राचीनकाल	मध्यकाल	आधुनिककाल
भेरी	ढोल	ढोल
दर्दर/दर्दुर	घट, घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)	घटम (दक्षिण भारतीय संगीत)
चक्रवाद्य	खंजरी (झांझ वाली), ढ़पली (बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग (बडे आकार की ढ़पली)	खंजरी (झांझ वाली), ढ़पली (बिना झांझ वाली), ढ़प अथवा चंग (बडे आकार की ढ़पली)
काष्ठदुदुम्भी	नगाडा	नगाडा
पणव	हुडुक अथवा हुड़का	हुडुक अथवा हुड़का
पटह	ढ़ोलक	ढ़ोलक
मृदंग	मृदंगम (दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज (उत्तर भारतीय संगीत)	मृदंगम (दक्षिण भारतीय संगीत), मृदंग अथवा पखावज (उत्तर भारतीय संगीत)

तबला'–तबले की उत्पत्ति कब, कैसे और किसने की इस पर अभीतक किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सका है। इसके लिए संगीत विद्वानों ने प्राप्त तथ्यों के आधार पर अपने–अपने मत दिए हैं। किन्तु यह सर्वमान्य है कि तबला वाद्य का इतिहास लगभग 350–400 वर्ष प्राचीन है। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को तबला वाद्य का मूल प्रवर्तक माना जाता है। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को दिल्ली घराने का प्रथम पुरुष माना जाता है एवंदिल्ली घराने को ही तबले का सबसे पुराना घराना माना जाता है। तबले के मुख्य छः घराने माने जाते हैं – दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस एवं पंजाब। दिल्ली घराने के वंशजों द्वारा अजराड़ा एवं लखनऊ घराने की स्थापना हुई। लखनऊ घराने के कलाकारों द्वारा शिष्य तैयार कर फर्रूखाबाद घराना एवंबनारस घराने की नींव पड़ी। पंजाब घराना स्वतंत्र रूप से पखावज वादन शैली से विकसित हुआ। इन घरानों के विकासक्रम से तबले की वादन शैली विकसित हुई, जिसने तबले को लोकप्रिय अवनद्य वाद्य बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

तबला एक भारतीय अवनद्य वाद्य है जिसके दो भाग दायाँ या तबला और बायाँ या डग्गा कहे जाते हैं। दायाँ भाग लकड़ी का बना होता है, जबकि बायाँ भाग धातु जैसे तांबा, लोहा या पीतल का बना होता है। दोनों भागों पर बकरी की खाल से बनी पूड़ी होती है, जिस पर स्याही लगी होती है। तबला वाद्य की उत्पत्ति, विकास, संरचना आदि संबंधी विस्तृत विवरण प्रथम सेमेस्टर की पुस्तक में आपने पूर्व में अध्ययन किया होगा।'

पखावज– पखावज का प्राचीन नाम मृदंग था। यद्यपि प्राचीन अवनद्य वाद्य मृदंग का आकार, पखावज की अपेक्षा छोटा था परन्तु आकार छोटा–बड़ा होने से वाद्य के नाम परिवर्तन का कोई औचित्य नहीं है। प्राचीन एवं मध्यकालीन संगीत में मृदंग नाम से ही अवनद्य वाद्य का परिचय मिलता है। मृदंग के स्थान पर पखावज नाम का प्रयोग मध्ययुग से प्रारम्भ हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी तक कहीं भी पखावज शब्द का प्रयोग प्राप्त नहीं होता है। पखावज शब्द का प्रयोग मुगल काल के पश्चात ही प्रचार में आया परन्तु फिर भी पखावज एवं मृदंग दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अवनद्य वाद्य के लिए होता रहा जो परम्परा वर्तमान में भी स्थापित है। आज उत्तर भारतीय संगीत परम्परा में मृदंग एवंपखावज दो पृथक अवनद्य वाद्य नहीं है। पखावज, मृदंग शब्द का ही पर्यायवाची है जो कि मध्ययुग में प्रचलित हुआ। विमल कान्त राय चौधरी ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीतकोश में पखावज के परिचय के रूप लिखा है कि 'पखावज' फारसी शब्द 'पख' तथा 'आवाज' से बना है। 'पख आवाज' का अर्थ है जिसमें मन्द ध्वनि निकलती हो। पखावज को ही मृदंग कहा जाता है।'

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तबले के मूल प्रवर्तक कौन थे?
2. तबले का मूल घराना कौन सा है?

3. पखावज का प्राचीन नाम क्या था?

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के विषय में जान चुके होंगे। साथ ही आप मध्य काल व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों को भी जान चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि प्राचीन काल, मध्य काल व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्यों के नामों में भिन्नता रही है। आप तबले की उत्पत्ति एवं विकास के विषय में भी जान गए होंगे। तबले की उत्पत्ति के विषय में कई मान्यताएं हैं किन्तु इसका इतिहास लगभग 300–350 वर्ष पुराना माना गया है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.3 क) लघु उत्तरीय प्रश्नरू

1. प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कुष्ट व अतिस्वर
2. भूमि दुदुम्भी
3. पखावज तथा वीणा
4. वेदव्यास
5. अठारह पुराण
6. वायु पुराण
7. पिच्छौरा वीणा
8. पटह
9. ढोल
10. हुडका

5.4 क) लघु उत्तरीय प्रश्न (उत्तर)

1. मध्यकाल
2. प्रबन्ध गायन
3. मुहम्मद शाह रंगीले
4. घट/घटम

5.4 क) लघु उत्तरीय प्रश्न (उत्तर)

1. सिद्धार खाँ ढाढ़ी
2. दिल्ली घराना
3. मृदंग

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भरत, नाट्यशास्त्र (अनु. – श्री बाबू शुक्ल शास्त्री), चौखम्भा पब्लिकेशन, वाराणसी, उ.प्र.।
2. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
3. बृहस्पति, आचार्य, भरत का संगीत सिद्धान्त।
4. कसेल, डॉ. नवजोत कौर, तत् वाद्यों की जननी वीणा, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।
5. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
6. चौधरी, डा. सुभाष रानी, संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
7. बंसल, डॉ. परमानंद, संगीत सागरिका, प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
8. शुक्ल, योगमाया, तबले का उदगम, विकास एवं वादन शैली।
9. मिस्त्री, आबान ई. 0, पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं।
10. सेन, अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन।
11. साभार गूगल।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध वाद्यों के बारे में विस्तार से समझाइए।

इकाई 6– पाठ्यक्रम के रागों भैरव एवं बिहाग में छोटा ख्याल/ रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना ।

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल व तानें
6.3.1 भैरव
6.3.2 बिहाग
6.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडें
6.4.2 राग भैरव में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना
6.4.2 राग बिहाग में रजाखानी़ गत व तोडों को लिपिबद्ध करना
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–222) के पंचम सेमेस्टर की छठी इकाई है। पिछली इकाई के अध्ययन के बाद आप प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में प्रयुक्त होने वाले भारतीय अवनद्य वाद्य के बारे में बता सकेगें।

प्रस्तुत इकाई में छोटे ख्याल व तानों एंव, रजाखानी गत व तोड़ों को इस पद्धति में लिपिबद्ध करना भी सविस्तार समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गतों को स्वरलिपिबद्ध कर लिखित रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- भारतीय संगीत के स्वरों, वर्णों, अलंकारों तथा राग रचनाओं के विभिन्न स्वरूपों को स्वरलिपि पद्धति में लिख पाऐंगे।
- आवश्यकता होने पर स्वरलिपि को पढ़ व समझ कर पुनः प्रस्तुति करने में सक्षम हो सकेंगे।
- स्वरों के विभिन्न स्वरूपों–शुद्ध, कोमल व तीव्र को सहज रूप में लिख कर प्रदर्शित कर सकेंगे।
- संगीत के विभिन्न सप्तकों को चिन्हित कर सकेंगे।
- संगीत के वर्णों–स्थायी, आरोही, अवरोही व संचारी को स्वरलिपि के माध्यम से भली–भॉति समझ सकेंगे।
- संगीत की राग रचनाओं, गतों के प्रकारों को स्वरलिपि में लिख सकेंगे तथा बार–बार पढ़ कर कंठस्थ कर सकेंगे, जिससे प्रस्तुतीकरण में सहजता प्राप्त होगी।
- स्वरलिपि के साथ हीताललिपि का भी ज्ञान आपको प्राप्त होगा। जिससे राग रचना अथवा गतों को विभिन्न भारतीय तालों में लिख सकेंगे तथा अपने वाद्य में सहजता से लय–ताल में प्रस्तुति देने में सफल हो सकेंगे।

6.3 पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल व तानें

6.3.1 राग भैरव का परिचय एवं बंदिश :

थाट	–	भैरव
जाति	–	सम्पूर्ण–सम्पूर्ण
वादी, संवादी	–	धैवत, ऋषभ (ध, रे)
गायन समय	–	प्रातःकाल का प्रथम प्रहर
समप्रकृति राग	–	कलिगड़ा, अहिर भैरव
आरोह	–	सा रे, ग म प, ध, नि सां
अवरोह	–	सां नि ध, प, म ग रे, सा
पकड़	–	ग म$^{नि}$ ध, $^{नि}$ध, प, ग म रे, रे सा

परिचय – राग भैरव रागांग राग है तथा यह आश्रय राग भी है क्योंकि राग एवं थाट का नाम एक ही है। भैरव थाट से अनेक रागों की उत्पत्ति हुई है। सातों स्वर लगने से राग की जाति सम्पूर्ण है। यह उत्तरांग प्रधान राग है क्योंकि इसका मुख्य स्वर धैवत है जो कि वादी स्वर है। यह प्रातःकालीन संधि प्रकाश राग है। भैरव राग शुद्ध राग है इसमें किसी अन्य राग का मिश्रण नहीं है। प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए यह राग सरल लगता है परन्तु जैसे–जैसे राग की गहराई में जाओ इसकी जटिलता एवं स्वर लगाव का पता चलता है। राग के धैवत एवं ऋषभ स्वर में आन्दोलन होता है।

मुख्य स्वर समूह :

सा^{ग} रे^{ग}रे सा, ध़ नि़ सा, रे रे सा, ध़ नि़ सा, सा रे रे ग म मप, प ग म रेग रे, ग म रे रे सा। ग म$^{नि}$ ध $^{नि}$ध ध प, ग म प ग म रे, ग म ध, ध, प ध नि नि ध ध प, ग म प म रे, रे सा म प$^{नि}$ ध $^{नि}$ध प, ध म प, ग म ध, ध नि ध, सां ध नि ध, ध प, ग म रे सा ।

राग भैरव– मध्यलय ख्याल (तीनताल)

स्थाई–धन धन मूरत कृष्ण मुरारी सुलछन गिरिधारी छवि सुन्दर लागे अति प्यारी

अन्तरा–बंसीधर मन मोहन सुहावे, बलि बलि जाँऊ मोरे मन भावे सबरंग ज्ञान विचारी

स्थाई

ग	म	ध	ध	पम	प	म	ग	रे	–	मग	(म)	रे	–	सा	–
ध	न	ध	न	मूऽ	ऽ	र	त	कृ	ऽ	ष्णऽ	मु	रा	ऽ	री	ऽ
सा	ध	–	नि	सा	सा	सा	सा	रे	–	सा	–	नि	सा	ग	म
सु	ल	ऽ	च्छ	ऽ	न	गि	रि	धा	ऽ	री	ऽ	छ	बि	सूं	ऽ
प	प	ध	–	सां	–	ध	प	पध	निसां	सांरें	सांनि	धनि	धप	मग	म
द	र	ला	ऽ	गे	ऽ	अ	ति	प्याऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री
0				3				x				2			

अन्तरा

प	–	प	–	ध	ध	नि	नि	सां	सां	सां	सां	नि	सां	सां	–
बं	ऽ	सी	ऽ	ध	र	म	न	मो	ह	न	सु	हा	ऽ	वे	ऽ
रें	रें	मं	मं	रें	–	सां	–	सां	सां	रें	सां	ध	–	प	–
ब	लि	ब	लि	जा	ऽ	ऊँ	ऽ	मो	रे	म	न	भा	ऽ	वे	ऽ
ग	म	ग	म	प	–	ध	प	पध	निसां	सांरें	सांनि	धनि	धप	मग	म
स	ब	रं	ग	ज्ञा	ऽ	न	बी	चाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री
0				3				x				2			

6.3.2 राग विहाग :–

"कोमल मध्यम तीरव सब, चढ़ते रि ध को त्याग
ग नि वादी सम्मवादीते जानत राग बिहाग।। रागचन्द्रिकासार

थाट	–	बिलावल
वादी	–	गन्धार
सम्वादी	–	निषाद
जाति	–	औडव–सम्पूर्ण
समय	–	रात्रि का दूसरा प्रहर

राग विहाग बिलावल थाट से उत्पन्न माना जाता है। इसके आरोह में रिषभ व धैवत वर्जित है, तथा अवरोह सम्पूर्ण है। अतः इस राग की जाति औडव–सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। विवादी स्वर के नाते इस राग में तीव्र मध्यम का अल्प प्रयोग होता है। रात्रि का राग होने के कारण यह प्रयोग सुन्दर प्रतीत होता है। अवरोह में रे, ध स्वर का अल्प प्रयोग है। ये स्वर यदि प्रबल हो जाएं तो बिलावल राग की छाया दिखाई देने लगेगी।

आरोह	–	सा ग, म प, नि सां।
अवरोह	–	सां, नि ध प, म ग, रे सा।
पकड़	–	ऩि सा, ग म प, ग म ग, रे सा।
न्यास का स्वर	–	सा, ग, प, नि,
समप्रकृति राग	–	यमन कल्याण,

विशेषताएं :–

1. इसकी चलन अधिकतर मन्द्र नि से प्रारम्भ की जाती है। जैसे – ऩि सा ग, रे सा
2. रे ध स्वर आरोह में तो वर्जित है ही, किन्तु अवरोह में भी इनका अल्प प्रयोग है। अधिकतर इन्हें कण के रूप में प्रयोग करते हैं। जैसे सां नि, ध्प, ध, प, ग, म, ग, रेसा।
3. राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए कभी–कभी अवरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम के साथ विवादी स्वर की तरह किया जाता है। जैसे – प म' ग म ग, रे सा। आजकल तीव्र मध्यम का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि इसे राग का आवश्यक स्वर माना जाने लगा है। कुछ पुराने गायक बिहाग में तीव्र म' का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते हैं।
4. तीव्र म' का आजकल प्रचार अधिक होने के कारण कुछ संगीतज्ञ इसे कल्याण थाट का राग मानते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इसे बिलावल थाट का राग माना गया है।
5. यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसमें बिलम्बित ख्याल, द्रुत ख्याल तथा तराना गाया जाता है।

स्वर विस्तार :–

1. ऩिसा – सा (सा) ऩि ऩि – – सा ग सा (सा) नि, ऩि ––– प़ , प़ ऩि ऩि ––
   सा रेग – सा।
2. ऩि सा, ग , म ग प ––– ग म ग , ऩि – सा –, रे ऩि सा, ग –– रे सा, प़ ऩि सा ग ––– म ग रे सा।
3. ग म प, प (प) – – मं – ग म, म म ग, (प) ग म रेग सा, प़ ऩि सा ग म प –– प मं ग म ग, ग म प ध ग म ग सा।
4. ग म प नि नि सां, (सां) नि, पनि प, मं ग म प नि – निप सां, (सां) नि –– प ग

म प, ग म ग सा,

5. प मं ग म न सां, प नि सां रें सां, नि सां रें रें सां नि, प नि सां, –– गं गं –

सां, रें नि सां गं सां, प नि सां रें सां, नि (सां) नि –– ध प, मं ग म ग, ग म प
ध ग म ग सा।

मध्यलय ख्याल – त्रिताल

स्थाई – सखियाँ चालो प्रभु के दरसन धन धन भाग सुफल होत नयन।
अन्तरा – सोला सिंगार सजो अत सुलछन,
कुसुम सुगन्धित हर रंग सुब सन
गिरिधर प्रभु के चरनन अरपन
आज करो अपनो तन मन धन।

स्थाई

सा		म			रे									म	
प	प	ग	म	ग	सा	–	नि़	प़	प़	नि़	–	सा	सा	ग	ग
स	ब	स	खि	यां	चा	ऽ	लो	प्र	भु	के	ऽ	द	र	स	न
0				3				×				2			
म															
ग	म	प	नि	सां	नि	मं	प	प	प	ग	–	म	गरे	नि़	सा
ध	न	ध	न	भा	ऽ	ग	सु	फ	ल	हो	ऽ	त	नऽ	य	न
0				3				×				2			

अन्तरा

मं			सां									नि			
प	–	प	नि	नि	–	नि	सां	सां	–	सां	सां	सां	रें	सां	सां
सो	ऽ	ला	सिं	गा	ऽ	र	स	जो	ऽ	अ	त	सु	ल	छ	न
0				3				×				2			
नि															
सां	सां	सां	सां	नि	–	प	प	प	प	नि	नि	सां	निध	मं	प
कु	सु	म	सु	ग	ऽ	धि	त	ह	र	रं	ग	सु	बऽ	स	न
0				3				×				2			
प								नि	रें						
ग	म	ग	म	प	प	नि	–	सां	गं	नि	सां	नि	नि	मं	प
गि	रि	ध	र	प्र	भु	के	ऽ	च	र	न	न	अ	र	प	न
0				3				×				2			
मं						ध				ग		ग			
प	नि	सां	रें	सां	नि	प	प	प	–	म	ग	म	गरे	नि़	सा
आ	ऽ	ज	क	रो	ऽ	अ	प	नो	ऽ	त	न	म	नऽ	ध	न
0				3				×				2			

आलाप – स्थाई (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1.	स	ब	स	खि	यां	चा	ऽ	लो	नि़	सा	ग	म	ग	रे	सा	–
	0				3				×				2			
2.	स	ब	स	खि	यां	चा	ऽ	लो	ग	म	प	–	ग	म	ग	सा
	0				3				×				2			

आलाप – स्थाई (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

3.	स	ब	स	खि	यां	चा	ऽ	लो	प्र	भु	के	ऽ	द	र	स	न
	नि़	सा	ग	म	ग	–	प	–	ग	म	प	म	ग	रे	सा	–
	0				3				×				2			
4.	ग	म	प	नि	–	प	मं	प	निप	मंप	ग	म	प	गम	गरे	सा–
	0				3				×				2			
5.	प	नि	सां	–	गं	रें	सां	–	नि	प	मं	प	गम	पनी	सां	–
	0				3				×				2			

आलाप – अन्तरा (8 मात्रा)

1.	सो	ऽ	ला	सिं	गा	ऽ	र	सा	सां	–	नि	सां	गं	–	–	सां
	0				3				×				2			
	सो	ऽ	ला	सिं	गा	ऽ	र	सा	नि	सां	गं	मं	गं	रें	सां	–
	0				3				×				2			

तानें – स्थाई (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1.	नि़सा	गम	पनी	धप	मंप	गम	गरे	सा–
	×				2			
2.	गम	पनी	सांनि	सांनि	धप	मंप	गम	ग–
	×				2			
3.	पनि	सांनि	धप	मंप	गम	पम	गरे	सा–
	×				2			
4.	सारें	सांनि	धप	मंप	गम	पम	गरे	सा–
	×				2			

तानें – स्थाई (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

5.	गम	गम	पनी	पनी	सांनि	सांनि	धप	मंप
	0				3			
	गम	पनी	सांनि	धप	मंप	गम	गरे	सा–
	×				2			

तानें – अन्तरा (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1.	सांनि	धप	मंप	गम	पमं	गम	पनि	सां–
	×				2			
	पनि	सारें	सांनि	धप	मंप	गमं	पनि	सां–
	×				2			

तानें – अन्तरा (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

3.

सांनि	धप	सांरें	सांनि	धप	मंप	गमं	पनि
0				3			
सांनि	धप	मंप	गम	पम	गम	पनी	सां–
×				2			

6.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडें

6.4.1 राग भैरव में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								ध	धध	प	ध	म	पप	ग	म
								दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
रे	S	ग	म	रे	रेरे	सा	S	सा	रेरे	ग	म	प	धध	नि	सां
दा	S	दा	रा	छा	दिर	दा	श्रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
धध	पप	गग	मम	गS	गरे	Sरे	साS								
दारा	दादा	रादा	दारा	दाS	रदा	Sदा	रा S								
X				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								म	पप	ग	म	ध	S	नि	सां
								दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
सां	S	सांसां	सांS	सं	रेंरें	सां	S	सां	रेंरे	गं	रें	सां	निनि	सां	S
दा	S	दा	रा	छा	दिर	दा	S	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
सांसां	निनि	धध	पप	गS	मरे	Sरे	साS								
दारा	दादा	रादा	दारा	दाS	रदा	Sदा	रा S								
X				2				0				3			

रजाखानी गत के तोडों को लिपिबद्ध करना :

तोड़े–स्थाई :–

x 2

1. गम पध सांनि सांनि। धप मप गम रेसा ।
2. गम पध सारें सांनि । धप मप गम रेसा ।
3. पम गम पध सारें ।सांनि धप गम रेसा ।

तोडे–अन्तराः–

x 2

1. सांनि धप मप गम । रेसा गम पध निसां ।
2. सारें सांनि धप मप । गम पध सारें सांऽ ।
3. गंमं रेंसां ऽरें सांनि । धप मप धनि सांऽ ।

सम से सम तक :–

1. गम रेसा निसा गम । पध मप गम रेसा ।
   मप गम धऽ मप । गम धऽ मप गम । ध

   X

2. पप मप धध पध । निनि धनि सांसां निसां ।
   रेंरें सारें सांनि धनि । धप मप गम रेसा ।
   पप मप गम रेग । धऽ धध पप मप ।
   गम रेसा ध– धध ।पप मप गम रेसा । ध

   X

6.4.2 राग बिहाग में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

रजाखानीगत

स्थाई

सा	मम	ग	प	–	नि	–	–सां	नि	–	प	पप	ग	मम	ग	–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	दिर	दा	ऽ
0				3				×				2			
ग	मम	प	नि	सां	निनि	ध	प	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

प	गग	म	प	–	निनि	सां	नि	सां	–	प	निनि	सां	गंगं	सां	–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	दिर	दा	ऽ
0				3				×				2			
गं	मंमं	गं	सां	–	निनि	ध	प	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

आठ मात्रा के तोडोंकोलिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(सम से)

गम	पनि	सांनि	धप	गम	पम	गरे	सा–
×				2			

तोड़ा नं. 2(सम से)

गम	पनि	सांरें	संनि	धप	म॑प	गम	गसा
×				2			

तोडानं. 3(सम से)

पम	गम	पनि	संनि	धप	म॑प	गम	गसा
×				2			

सोलह मात्रा के तोड़ोंकोलिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(सम से)

गम	पम	गम	पनि	सांनि	धप	गम	पनि	
×				2				
सांरें	सांनि	धप	म॑प	गम	पम	गरे	सा–	
0				3				
गम	पम	गम	पसां	नि–	<<	गम	पम	
×				2				
गम	पसां	नि–	<<	गम	पम	गम	पसा	नि
0				3				×

तोड़ा नं. 2(सम से)

पम	गम	गम	पनि	मप	निसां	पनि	सांरे	
×			2					
गंमं	गरें	सारें	सांनि	धप	म॑प	गम	गसा	
0			3					
पम	गम	प–	निसां	नि–	<<	पम	गम	
×			2					
प–	निसां	नि–	<<	पम	गम	प–	निसां	नि
0			3					×

अभ्यास प्रश्न

क. एक शब्द में उत्तर दीजिएः–

1. एकताल में कौन से ख्याल गाए जा सकते हैं?
2. तीनताल में कितनी मात्राएं तथा विभाग होते हैं?
3. राग भैरव का वादी स्वर क्या है?
4. राग बिहाग की जाती क्या है?

ख. लघु उत्तरीय प्रश्नः–

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मध्यलय ख्याल को तानों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

अभ्यााास प्रश्न

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. राग बिहाग का वादी स्वर क्या है?
2. राग भैरव गायन समय क्या है?

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग राग भैरव का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप स्वरों की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से गायन करने में सक्षम होंगे। ख्याल गायन के अन्तर्गत आने वाले बड़े ख्याल व छोटे ख्याल की रचनाएँ आपके पाठ्यक्रम के रागों में दी गई हैं। इन रागों का तानों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तानों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे एवं आप अपने पाठ्यक्रम के रागों का ख्याल गायन शैली में गायन प्रस्तुत कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राग की अन्य रचनाओं की स्वरलिपि को भी समझ कर गा सकने में सक्षम होंगे।

रजाखानी गतों को लिपिबद्ध करने की इस विधि से आप समझ गए होंगे कि गायन में छोटे ख्याल व ठुमरी आदि सुरूचिपूर्ण संरचनाओं के प्रभाव से स्वर वाद्यों में भी प्रभावपूर्ण संरचनाओं को प्रस्तुत करने हेतु प्रयास हुए और अत्यन्त सुघड़ वादन शैली की खोज हुई। द्रुत लय में रागों की अदायगी हेतु लखनऊ के गुलाम खाँ ने रजाखानी गत को विकसित किया जो कि पूरबी बाज के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अपने मूल स्वरूप में रजाखानी गत भी तीनताल में ही बजाई जाती थी और अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। वादक कलाकारों ने रजाखानी गत को भी अन्य तालों एकताल, झपताल व रूपक आदि में ढाल कर रजाखानी गतों को लालित्य पूर्ण आयाम प्रदान किया है। आप रजाखानी गतों की रिकार्डिंग्स जो कि वर्तमान काल के कलाकरों स्व उ0 विलायत खाँ, स्व0 पं0 निखिल बनर्जी, पं0 रविशंकर, स्व उ0 अली अकबर खाँ, उस्ताद अमजद अली खान आदि द्वारा बजाई गई हैं, को सुनकर समझ पाएंगे कि मीड़, मुर्की, गमक, कृन्तन, जमजमा व घसीट आदि को कितनी खूबसूरती से आपने रजाखानी गत में पिरोया है।

इन गतों को लिपिबद्ध करने तथा इनके तोड़ों को लिपिबद्ध कर समायोजित करने की इस विधि का ज्ञान प्राप्त कर आप इनको भविष्य हेतु सुरक्षित रखने का भी प्रयास करेंगे।

6.6 शब्दावली

1. **पूर्वी बाज** – लखनऊ के गुलाम रजा द्वारा विकसित रजाखानी गत की वादन शैली को पूर्वी बाज कहते हैं।
2. **दा,रा,दिर** – स्वर वाद्यों के अन्तर्गत तत् वाद्य में आघात से उत्पन्न बोलों को इन नामों से जाना जाता है।
3. **रजाखानी गत** – स्वर वाद्यों में मुख्य रूप से तत् वाद्यों में द्रुत गति से बजने वाली राग रचनाओं को रजाखानी गत कहा जाता है। इसकी खोज लखनऊ के गुलाम रजा द्वारा की गई।
4. **तोड़ा** – रागों को विस्तार करने हेतु गतों में बजने वाली विशेष संरचनाओं को तोड़ा कहते हैं जो कि तैयारी से बजायी जाती है तथा दुगुन व चौगुन आदि लय में इनका प्रयोग होता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. एक शब्द में उत्तर दीजिए:–

.1. विलम्बित ख्याल	2. 16 मात्रा व 4 विभाग
3. धैवत	4 औडव–संम्पूर्ण

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. ग
2. प्रातः काल

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग–3 व 4।
3. झा, रामाश्रय, अभिनव गीतांजली।
4. श्रीवास्तव, हरीशचन्द्र, मधुर स्वरलिपि संग्रह।
5. श्रीवास्तव, प्रो0 हरिशचन्द्र, **प्रवीण प्रवाह**, संगीत सदन प्रकाशन, 88 साउथ मलाका, इलाहाबाद।
6. नायक, श्रीमती गायत्री, **सुरों की सहयात्रा**, मनोहर नायक,16 पंचदी अपार्टमेंट विकास पुर, नई दिल्ली।
7. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण(सं0), **संगीत सितार** : गत–तोड़ो अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस।

6.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गुणे, पं0 नारायण लक्ष्मण, संगीत प्रवीण भाग—1, 2, 3 व 4।
2. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण(सं0), वाद्य वादन अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. महाडिक, डॉ0 प्रकाश, भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य।
4. चौरसिया, ओम प्रकाश, वीणा—वाणी, संगीत कार्यालय हाथरस।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपने पाठ्यक्रम के किसी एक राग में छोटे ख्याल की स्वरलिपि, स्थाई व अन्तरा सहित लिखिए।
2. पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 7— पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों ठेकों को दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 तालों का परिचय एवं स्वरूप
    7.3.1 झपताल का सम्पूर्ण परिचय
    7.3.2 दादरा ताल का सम्पूर्ण परिचय
7.4 तालों की लयकारियाँ
    7.4.1 झपताल की लयकारियाँ
    7.4.2 दादरा ताल की लयकारियाँ
7.5 सारांश
7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम, माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)–222) के पंचम सेमेस्टर की सप्तम इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गतों को स्वरलिपिबद्ध कर लिखित रूप में समझ चुके होंगें।

प्रस्तुत इकाई में भातखण्डे जी द्वारा निर्मित ताललिपि पद्धति का पूर्ण परिचय देते हुए पाठ्यक्रम की तालों को उदाहरण स्वरूप लिपिबद्ध भी किया गया है। साथ ही तालों की लयकारियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ताललिपि पद्धति के महत्व को समझ सकेंगे। हिन्दुस्तानी संगीत से सम्बन्धित तालों के विभिन्न तत्वों को भी जान सकेंगे। गीत रचनाओं में तालों के प्रयोग एवं उन्हें लिपिबद्ध करने की पद्धति को भी आप समझ सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे कि ताललिपि पद्धति द्वारा किस प्रकार ताल का क्रियात्मक स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।
- ताल सम्बन्धी समस्त तत्वों को समझते हुए उनके प्रयोग सम्बन्धी नियमों को भी जान सकेंगे।
- ताल के लयकारी सम्बन्धी पक्ष को समझते हुए संगीत में इनका प्रयोग कर सकेंगे।

7.4 तालों का परिचय एवं स्वरूप

7.3.1 झपताल का सम्पूर्ण परिचय – तबले की लोकप्रिय और प्रचलित तालों में झपताल का नाम आता है। यह खण्ड जाति के तालों में से एक है। झपताल का प्रयोग ख्याल गायन की विलम्बित व मध्य लय की रचनाओं में किया जाता है। स्वर वाद्यों में गत वादन की संगति में भी इसका प्रयोग किया जाता है। स्वतंत्र वादन हेतु भी इस ताल का खूब प्रयोग किया जाता है। अतः इसमें मुखड़ा, मोहरा, पेशकार, कायदा, बाँट, रेला, टुकड़ा, परन, गत, चक्करदार आदि रचनाएं बजाई जाती हैं। सादरा नामक गायन शैली की संगति भी इस ताल में होती है। इसका प्रयोग कत्थक नृत्य के साथ भी किया जाता है।

यह 10 मात्रा का विषमपद ताल है। यह चार विभागों (2/3/2/3) में विभक्त है। इसमें पहली, तीसरी व आठवीं पर ताली तथा छठीं पर खाली है।

मात्रा–10, विभाग–4, ताली–1,3,8 पर तथा खाली–6 पर

ठेका

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	
|धी	ना	|धी	धी	ना	|ती	ना	|धी	धी	ना	|धी
×		2			0		3			×

7.3..2 दादरा ताल का सम्पूर्ण परिचय – दादरा ताल चंचल व श्रृंगारिक प्रकृति का ताल है। दादरा एक विशेष गायन शैली का नाम भी है। इसका प्रयोग तबला, ढ़ोलक, नाल, ताशा, नक्कारा तथा खोल आदि वाद्यों पर किया जाता है। इसका प्रयोग उपशास्त्रीय संगीत, भाव संगीत, लोक संगीत, भजनों तथा फिल्मी संगीत के अन्तर्गत–ठुमरी, दादरा, गजल, भजन, चैती, कजरी आदि के साथ संगति के लिए किया जाता है। इसमें लग्गी, लड़ी तथा ठेके की किस्मों का प्रयोग होता है। इसका वादन प्रायः मध्य व द्रुत लय में होता है। शास्त्रीय संगीत हेतु इसका प्रयोग नहीं होता है। दादरा ताल सोलो वादन के उपयुक्त नहीं है।

दादरा ताल 6 मात्राओं का समपद ताल है। मात्राएँ 2 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 3–3 मात्राओं का होता है। सम प्रथम मात्रा में 'धा' पर है। इस ताल में खाली का स्थान 1 हैं तथा ताली का स्थान भी 1 हैं।

मात्रा – 6, विभाग – 2, ताली – 1 पर तथा खाली – 4 पर

<u>ठेका</u>

धा	धी	ना	धा	ती	ना	धा
x			0			x

अभ्यास प्रश्न

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) झपताल का परिचय दीजिए।
(ii) दादरा का स्वरुप बताइए।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) झपताल में तीसरी मात्रा पर .... होती है।

(ख) दादरा ताल में .... नहीं होता है।

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) दादरा ताल किस गायन शैली में प्रयुक्त होती है?

7.4 तालों की लयकारियाँ

यदि कहा जाए कि लय के बिना संगीत संभव नहीं है तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समय की समान गति ही लय कहलाती है। लय एवं लयकारी में अन्तर होता है। लय यदि संज्ञा है तो लयकारी क्रिया है। लय और लयकारी दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। बिना लय के लयकारी भी सम्भव नहीं है। लय ही लयकारी का आधार है। लय अनेक प्रकार की हो सकती हैं परन्तु बहुत समय पहले से ही संगीत विद्वानों ने मुख्य रूप से इसके तीन प्रकार माने हैं।

1. विलम्बित लय   2. मध्य लय   3. द्रुत लय

इसके अतिरिक्त देखा जाए तो अतिविलम्बित या अति द्रुत लय भी होती है परन्तु मुख्य रूप से क्रमशः यह दोनों भी विलम्बित एवं द्रुत के अन्तर्गत आ जाती हैं, इसीलिए इन तीन मुख्य लय प्रकारों को ही सर्वसम्मति से मान्यता प्राप्त है।

अब आप लयकारी को जानेंगे। लयकारी की परिभाषा हम यह दे सकते हैं कि "संगीत में लय के विभिन्न दर्जे करने की क्रिया को लयकारी कहते हैं।" लय के दर्जे करने से तात्पर्य यह है कि कलाकार जब कलात्मक दृष्टि से कभी एक मात्रा में दो, तीन या चार मात्रा तथा कभी दो में तीन, चार में पाँच मात्रा पढ़कर/दिखाकर लय के चमत्कार का प्रदर्शन करता है तो इसी को लयकारी कहते हैं।

लय के समान ही लयकारी के भी विभिन्न प्रकार माने गए हैं परन्तु इसके भी दो मुख्य प्रकार हैं।

एक सीधी लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत दुगुन, चौगुन अठगुन आदि आते हैं। दूसरी आड़ की लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत तिगुन, आड़, कुआड़ तथा बिआड़ आदि लयकारियाँ आती हैं।

लयकारियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की लयकारियाँ हो सकती हैं परन्तु पाठ्यक्रम के अनुसार आप सीधी लयकारियों को ही जान सकेंगे। विभिन्न तालों में सीधी लयकारी से सम्बन्धित दुगुन, चौगुन को आप जानेंगे। तालों में लयकारी करने से पूर्व आड़ लयकारियों के सम्बन्ध में मात्र एक परिचय जानना आवश्यक सा प्रतीत होता है। सीधी लयकारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लयकारी को जिसके अन्तर्गत एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, तीन मात्रा या सवा मात्रा आदि आते हैं, आड़ की लयकारी कहते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से वर्तमान में आड़ का व्यापक अर्थ हो चुका है। आड़ का विशेष रूप से यह अर्थ है कि वह लयकारी जिसमें एक मात्रा में डेढ़ या दो मात्रा में तीन मात्रा की लयकारी हो। एक मात्रा में डेढ़ हो या 2 मात्रा में 3 बात एक ही है। इसी प्रकार कुआड़ लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रा में सवा मात्रा या 4 मात्रा में 5 मात्रा आती हैं। यह लयकारियाँ कठिन मानी जाती हैं। आप यहाँ तालों में सीधी लयकारी करना जान सकेंगे। तालों के विषय में आप सम्पूर्ण परिचय जान चुके है अब तालों की दुगुन, चौगुन लयकारियाँ जानेंगे।

7.4.1 झपताल की लयकारियाँ :–

मात्रा–10, विभाग–4, ताली–1, 3 व 8 पर, खाली–6 पर

ठेका

धि	ना	धि	धि	ना	ति	ना	धि	धि	ना	धि
x		2			0		3			x

दुगुन की लयकारी – झपताल की आवृति दुगुन में दो बार प्रयोग की जाएगी।

धिना	धिधि	नाति	नाधि	धिना	धिना	धिधि	नाति	नाधि	धिना	धि
X		2			0		3			x

एक आवृति में दुगुन :– झपताल की दुगुन पॅाच मात्रा की होगी अतः एक आवृति की दुगुन छठवीं मात्रा से आरम्भ करनी होगी।

6	7	8	9	10	
धिना	धिधि	नाति	नाधि	धिना	धि
0		3			x

चौगुन की लयकारी – दुगुन की भाँति ही चौगुन की लयकारी भी झपताल की आवृति में चार बार प्रयोग करनी होगी।

धिनाधिधि	नातिनाधि	धिनाधिना	धिधिनाति	नाधिधिना	धिनाधिधि	नातिनाधि	धिनाधिना	धिधिनाति	नाधिधिना
X		2			0		3		

एक आवृति में चौगुन :– एक आवृति की चौगुन $^{10}/_{4} = 2\,^{1}/_{2}$ मात्रा की होगी एवं $7\,^{1}/_{2}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

(1 2 धि ना)	(धि धि ना ति)	(ना धि धि ना)	धी
3			x

7.4.2 दादरा ताल की लयकारियाँ :–

मात्रा–6, विभाग–2, ताली–1 पर, खाली–4 पर

ठेका

धा	धी	ना	धा	ती	ना	धा
×			0			×

दादरा ताल की दुगुन :–

धाधी	नाधा	तीना	धाधी	नाधा	तीना	धा
×			0			×

एक आवर्ति की दुगुन :–

4	5	6	
(धाधी)	(नाधा)	(तीना)	धा
0			×

दादरा ताल की चौगुन :–

धाधीनाधा	तीनाधाधी	नाधातीना	धाधीनाधा	तीनाधाधी	नाधातीना	धा
×			0			×

<u>एक आवर्ति की चौगुन</u> – $1\frac{1}{2}$ मात्रा में होगी एवं $4\frac{1}{2}$ मात्रा बाद आरम्भ होगी।

	6	
ऽऽधाधी	नाधातीना	धा
0		×

अभ्यास प्रश्न

1) **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :**

(i) लयकारी से आप क्या समझते है? किन्ही दो तालों की दुगुन व चौगुन लयकारी लिखिए।

2) **लघु उत्तरीय प्रश्न :**

(i) झाप ताल की चौगुन लयकारी लिखिए।
(ii) दादरा ताल की दुगुन लयकारी लिखिए।
(iii) लयकारी से आप क्या समझते हैं?

3) **एक शब्द में उत्तर दीजिए :**

(i) झपताल की चौगुन किस मात्रा से प्रारम्भ होगी?
(ii) चौगुन लयकारी में एक मात्रा में कितनी मात्रा समाहित होती हैं?
(iii) दादरा की चौगुन कितनी मात्राओं में पूर्ण रूप से आती है?

7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत के अभिन्न अंग व तालों की उत्पत्ति रागों की रंजकता को बढ़ाने के लिए हुई है। वर्तमान समय में उत्तरी भारत में अनेकों ताल प्रचलित हैं। जैसे – झपताल, दादरा ताल आदि। ताल के योग से संगीत में रसानुभूति क्षणिक न रहकर परमानन्द प्राप्ति के साधन में सहायता करती है। पहले गीत रचनाओं एवं तालों से सम्बन्धित सभी अव्यवों को कंठस्थ करना पड़ता था परन्तु काललिपि पद्धति के आने से इस क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हो गया। संगीत के अन्तर्गत आने वाली समस्त स्वर–ताल बद्ध रचनाओं में लय एवं ताल के समस्त अंगों को समझना बेहद आसान हो गया है। गीत रचनाओं में जिस लय एवं ताल में संगत होती है उसमें समान रूप से कायम रहना परम आवश्यक है। विशेष रूप से ख्याल गायन में ताल पक्ष के लिए 'तबला' वाद्य में संगत की जाती है तथा ध्रुपद गायन में 'पखावज' वाद्य में संगत की जाती है। विभिन्न तालों की लयकारी में विभिन्न लयों के मध्यम से चमत्कार का प्रदर्शन किया जाता है। लयकारी द्वारा गीत रचनाओं एवं तालों में कुछ नवीनता आ जाती है जिससे गायन–वादन में नवीन सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। इस इकाई के अध्ययन से आप लय–ताल एवं लयकारी के सम्बन्ध में सभी तत्वों के समुचित प्रयोग को समझ सकेंगे।

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.4 की उत्तरमाला :

2)रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(क)उत्तर : खाली (ख) उत्तर : दादरा

3)एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : ख्याल गायन

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पंडित विष्णु नारायण, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1990), *राग परिचय भाग 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1993), *तबला प्रकाश भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, (1994), *ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. झपताल एवं दादरा ताल का सम्पूर्ण परिचय देते हुए इनकी दुगुन एवं चौगुन की लयकारियाँ लिखिए।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**